भीतर

3 दंगों के लिए अटल व आडवाणी को भी पकड़ो

9 भाजपा की उमा भारती

4 चुनावी घोषणापत्रों में मुस्लिम मुद्दे

13 पाकिस्तान, तालिबान और डी-कंपनी

14 सनातन-संत सूफ़ी यात्रा

चौथी दुनिया

दिल्ली 26 अप्रैल 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

मूल्य 20 रुपये

दो दशकों की दुश्मनी ने भाजपा को एक होने न दिया

लोकसभा चुनाव की तैयारी के बीच भारतीय जनता पार्टी के दो नेताओं के बीच वर्चस्व की लड़ाई चल रही है. एक प्रधानमंत्री बनना चाहता है, तो दूसरा उन्हें उसे कुर्सी से दूर रखने के लिए चक्रव्यूह रच रहा है. वर्चस्व की यह लड़ाई उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय जनता पार्टी की उम्र है. यानी जब से पार्टी बनी, तब से मुरली मनोहर जोशी और लालकृष्ण आडवाणी के बीच शीत युद्ध चल रहा है. दोनों पार्टी के क़द्दावर नेता हैं. दोनों के अपने-अपने समर्थक हैं. दोनों को लगता है कि उन्होंने भाजपा को दो सांसदों की पार्टी से राष्ट्रीय पार्टी बनाने में अहम भूमिका निभाई है. दोनों को लगता है उनके बिना पार्टी अब तक ख़त्म हो चुकी होती. पार्टी में जितनी भी खामियां हैं, वे दूसरे की वजह से हैं. यही दोनों एक-दूसरे के बारे में सोचते हैं.

अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी - ये तीन नाम हैं, जिनकी मेहनत और राजनीतिक समझ की वजह से बीजेपी दो सांसदों की पार्टी से आज राष्ट्रीय पार्टी बनी है. अटल हमेशा से इस पार्टी के सर्वोच्च नेता रहे. और आडवाणी ने मुरली मनोहर जोशी को कभी भी दूसरे नंबर का नेता नहीं माना. वह हमेशा से ही अटल बिहारी वाजपेयी के बाद खुद को गिनते थे. कई बार ऐसा भी हुआ कि जोशी ने अपने प्रतियोगी या यूं कहें कि आडवाणी को आड़े हाथ लेने की कोशिश की, लेकिन वाजपेयी और आडवाणी की दोस्ती के सामने हमेशा परास्त हुए. भारतीय जनता पार्टी को अटल-आडवाणी की जोड़ी ने अपने हिसाब से चलाया. अटल बिहारी वाजपेयी के बाद आडवाणी पार्टी के अध्यक्ष बने. मुरली मनोहर जोशी और लालकृष्ण आडवाणी के बीच वर्चस्व की लड़ाई तब सामने आई, जब जोशी भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष थे. जून 1993 में दूसरे अध्यक्ष का चुनाव होना था. जोशी चाह रहे थे कि उन्हें दोबारा अध्यक्ष बना दिया जाए लेकिन आने वाले चुनाव को देखते हुए अटल और आडवाणी पार्टी की कमान अपने हाथ में रखना चाहते थे. मुरली मनोहर जोशी हमेशा से ही संघ के नज़दीक रहे. आरएसएस के अन्य संगठनों जैसे भारतीय मजदूर संघ के नेता दत्तोपंत ठेंगड़ी, विश्व हिंदू परिषद के अशोक सिंघल, विनय कटियार और बी एल प्रेम जैसे नेता जोशी को फिर से अध्यक्ष बना देखना चाहते थे. ये लोग हमेशा से अटल बिहारी वाजपेयी और आडवाणी के ख़िलाफ़ रहे. दोनों नेता आपस में अध्यक्ष पद के लिए लड़ रहे थे. भाजपा के भीतर उठे हर विवाद की आख़िरी सुनवाई आरएसएस में होती है, संघ का फ़ैसला अंतिम होता है.

मुरली मनोहर जोशी के संघ के साथ अच्छे रिश्ते होने के बावजूद फ़ैसला आडवाणी के पक्ष में हुआ. जोशी को अध्यक्ष पद से हटना पड़ा. इस हार के बाद वह सिर्फ इतना ही कह पाए कि भारतीय जनता पार्टी में सामूहिक नेतृत्व की प्रथा है, इसलिए अध्यक्ष पद को लेकर कोई लड़ाई नहीं है. लेकिन दोनों तरफ से तलवारें निकल गईं. जोशी को ठंडा करने के लिए स्वर्गीय रज्जू भैया ने पॉलिसी-मेकर नाम का एक नया पद बनाया लेकिन उन्होंने इस पद को लेने से इंकार कर दिया. आडवाणी को फिर से अध्यक्ष बनाने में रज्जू भैया ने अहम भूमिका निभाई थी इसलिए वह जोशी के समर्थक अशोक सिंघल के निशाने पर आ गए. उन्होंने सार्वजनिक तौर पर बयान दिया कि रज्जू भैया ने आडवाणी को अध्यक्ष बनाने से पहले किसी से बातचीत नहीं की. वह सोचते हैं कि संघ से जुड़े सारे लोग उनके गुलाम हैं. दोनों गुटों के बीच बिगुल बज गया. इसका असर पार्टी की केंद्रीय और राज्य इकाई पर साफ दिखा. पार्टी में सत्ता समीकरण बदलते ही छोटे और बड़े नेताओं ने अपनी निख़ का केंद्र बदलना शुरू कर दिया.

देश की जनता को शायद पता नहीं हो, लेकिन सियासी गलियारों में यह बात सब जानते हैं कि एनडीए सरकार के दौरान देश के उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी और मानव संसाधन मंत्री मुरली मनोहर जोशी की आपस में बातचीत नहीं थी. वे एक दूसरे से बात तक नहीं करते थे. जब भी उन्हें बात करनी होती थी, तो इन दोनों के माध्यम बनते थे देश के प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी. जो लोग मुरली मनोहर जोशी को नज़दीक से जानते हैं, वे बताते हैं कि एनडीए की सरकार बनने के समय वह गृहमंत्री बनना चाहते थे, लेकिन लालकृष्ण आडवाणी बन गए. आडवाणी को हमेशा यह लगता था कि जोशी हर जगह उनसे मुक़ाबला करते हैं, इसलिए दोनों ने एक दूसरे से बातचीत भी बंद कर दी. भारतीय जनता पार्टी के दो दिग्गज नेता दो दशक से एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी बने रहे. इन दोनों की वजह से पार्टी में हमेशा गुटबंदी का बोलबाला रहा. इतिहास का वही पन्ना आज भी बीजेपी को बांट रहा है. म.कु.

भाजपा को महंगी पड़ेगी आडवाणी और जोशी की अटल जंग

भाजपा में दूसरे स्थान पर कौन है, इसको लेकर शुरुआत से ही खींचतान होती रही. लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी के बीच दूसरे नंबर के लिए शीत युद्ध का सिलसिला आज भी जारी है. भाजपा के अंदर नेताओं की इस लड़ाई में फिलहाल आडवाणी का पलड़ा भारी दिख रहा है और मुरली मनोहर जोशी हाशिए पर धकेल दिए गए हैं.

मनीष कुमार

आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी का शीत युद्ध फिर से भाजपा की चुनावी तैयारियों पर असर दिखा रहा है. भारतीय जनता पार्टी के अंदर एक तूफान उफन रहा है. भारतीय जनता पार्टी के नेताओं के सामने यह चुनौती है कि वे पार्टी के किस गुट के साथ जाएं. पार्टी फिर से दो गुटों में बंटी नज़र आ रही है. एक पार्टी को चुनाव जिताना चाहता है, आडवाणी को प्रधानमंत्री बनना चाहता है. दूसरा गुट वह है, जो चुपचाप आडवाणी एंड कंपनी की हर चाल, हर रणनीति को देख रहा है. उनकी ग़लतियों को पकड़ने की कोशिश कर रहा है. दूसरा गुट यह चाहता है कि भारतीय जनता पार्टी इस चुनाव में हार जाए और आडवाणी का प्रधानमंत्री बनने का सपना अधूरा ही रह जाए. चुनाव के बाद नेतृत्व के सवाल पर भारतीय जनता पार्टी के अंदर घमासान शुरू हो चुका है. भाजपा में शीर्ष नेतृत्व को लेकर एक बात शुरू से तय रही. पार्टी के सबसे बड़े नेता अटल बिहारी वाजपेयी के ऊपर कभी कोई सवाल नहीं खड़ा हुआ. लेकिन दूसरे स्थान पर कौन है, इसको लेकर शुरुआत से ही खींचतान होती रही. लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी के बीच दूसरे नंबर के लिए शीत युद्ध का सिलसिला आज भी जारी है. भाजपा के अंदर नेताओं की इस लड़ाई में फिलहाल आडवाणी का पलड़ा भारी दिख रहा है और मुरली मनोहर जोशी हाशिए पर धकेल दिए गए हैं. पार्टी के लोग बताते हैं कि चुनाव के बाद की स्थिति बदल जाएगी. बीजेपी में मुरली मनोहर जोशी एक बार फिर से मुख्य भूमिका में नजर आएंगे.

अब सवाल यह है कि चुनाव के बाद स्थिति कैसे बदलेगी...

भाजपा में अब कई लोग यह मानने लगे हैं कि लोकसभा चुनाव में पार्टी हार जाएगी. ये वे लोग हैं, जो आडवाणी एंड कंपनी से नाराज़ हैं. इस चुनाव में जिन्हें कोई खास भूमिका नहीं दी गई. इन लोगों के मुताबिक गठबंधन को लेकर ठीक से योजना नहीं बन पाई. एनडीए सरकार में जो पार्टियां भाजपा के साथ थीं, वे इस चुनाव में विरोध में खड़े हैं. ख़ासकर उड़ीसा में बीजेडी के साथ गठबंधन टूटने से बीजेपी में मायूसी है. पार्टी संगठन को मज़बूत करने में भारतीय जनता पार्टी असफल रही है. राजस्थान और दिल्ली के चुनाव परिणामों ने भाजपा की कमर तोड़ दी. उदासीनता का आलम यह है कि भाजपा के कुछ नेता तो अब साफ-साफ कहने भी लगे हैं कि हम चुनाव हारने वाले हैं. वे कहते हैं कि भाजपा को अब आडवाणी एंड कंपनी चला रही है. पार्टी में अध्यक्ष राजनाथ सिंह का भी कुछ नहीं चलता. राजनाथ सिंह की अपनी परेशानी है. वह गाज़ियाबाद से लोकसभा उम्मीदवार हैं. इस सीट को जीतना राजनाथ सिंह के लिए आसान नहीं होगा. कोई चमत्कार ही उन्हें जिता सकता है. मुरली मनोहर जोशी जो पार्टी में आडवाणी के समकक्ष माने जाते थे, फिलहाल वाराणसी से चुनाव लड़ रहे हैं. एक वक्त था, जब भाजपा के होर्डिंग्स और प्रचार में जोशी की तस्वीर अटल और आडवाणी के साथ दिखाई देती थी. लेकिन अब पार्टी उन्हें इस लायक नहीं समझती. चुनाव प्रचार के लिए मुरली मनोहर जोशी का कोई व्यापक कार्यक्रम नहीं बनाया गया. एक रणनीति के तहत उन्हें अपने ही चुनाव क्षेत्र में सीमित कर दिया गया है. पत्रकारों ने जब पार्टी की इस बेरुखी के बारे में पूछा, तो बताया गया कि उनकी कहीं से डिमांड नहीं है. अगर कोई अपने क्षेत्र में बुलाना चाहे, तो उनका भी कार्यक्रम बन सकता है. अब ऐसी ग़लती करने की ज़ुर्रत कौन करे. जब पार्टी का हर फ़ैसला आडवाणी एंड कंपनी ले रहा है, तो भला मुरली मनोहर जोशी को बुलाकर कौन अपनी फ़ज़ीहत कराए.

मुरली मनोहर जोशी राजनीति के पुराने खिलाड़ी हैं. जब इस चुनाव में मैनिफेस्टो (घोषणापत्र) कमेटी का अध्यक्ष बना दिया गया, तो उन्होंने अपनी चाल चल दी. आडवाणी एंड कंपनी की पूरी कोशिश ये रही कि आडवाणी को एक उदारवादी चेहरे के रूप में पेश किया जाए. विकास और एनडीए के कामों पर वोट मांगने की रणनीति बनाई गई. इंटरनेट और टीवी के जरिए नौजवानों को लुभाने की कोशिश की जा रही है. लेकिन घोषणापत्र आते ही यह साफ हो गया कि पार्टी की एक जैसी रणनीति नहीं. पार्टी में बिखराव है. बीजेपी और आडवाणी को उदारवादी रूप में पेश करने की रणनीति की मुरली मनोहर जोशी ने हवा निकाल दी. घोषणापत्र में राममंदिर, समान नागरिक संहिता और अनुच्छेद 370 की बात डाल कर तय कर दिया गया कि चुनाव के बाद भी बीजेपी को गठबंधन बनाने में परेशानी होगी. बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने तो घोषणापत्र जारी होने के साथ ही साफ कह दिया कि यदि भाजपा को हमारा समर्थन चाहिए, तो उन्हें ये मुद्दे छोड़ने होंगे, वरना हम उनका साथ नहीं देंगे. मुरली मनोहर जोशी को लगता है कि पार्टी ने उनके साथ नाइंसाफ़ी की है. उन्हें आडवाणी के समकक्ष मानने के बजाए उन्हें दरकिनार कर दिया गया. ये बात तय है कि चुनाव के बाद अगर भाजपा हार जाती है और आडवाणी प्रधानमंत्री नहीं बनते हैं, तो मुरली मनोहर जोशी का नया अवतार होगा. आडवाणी 82 साल के हैं. 2014 के लोकसभा चुनाव में वह शायद ही हिस्सा ले सकें. इसलिए इस चुनाव के बाद ही भारतीय जनता पार्टी में शीर्ष नेतृत्व के लिए संघर्ष शुरू हो जाएगा. आडवाणी के बाद मुरली मनोहर जोशी ही पार्टी के सबसे वरिष्ठ नेता हैं. वे इस पद के लिए प्रमुख उम्मीदवार होंगे. यही वजह है कि भाजपा में वह एक ध्रुव बन कर उभर रहे हैं. भाजपा के कई नेता अभी से उनसे नज़दीकियां बढ़ा रहे हैं. आडवाणी भी जानते हैं कि यह उनका आख़िरी चुनाव है. वह चाहते हैं कि उनके बाद पार्टी की कमान उनके किसी क़रीबी के हाथ में हो.

manish.chauthiduniya@gmail.com

कुछ तुम कहो, कुछ हम कहें

जिस वक्त मुरली मनोहर जोशी भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष थे, उस वक्त भारतीय जनता पार्टी के कार्यालय में गुपचुप बातें होती थीं. भाजपा के एक गुट के नेता जब आपस में बातें करते थे, तो लालकृष्ण आडवाणी को आडवाणी जी नहीं, साईं के नाम से बुलाते थे. वे कहते थे, जहां भी तुम्हें एक सिंधी और एक सांप दिखाई दे तो पहले सिंधी को ख़त्म करना चाहिए क्योंकि सिंधी सांप से ज़्यादा ख़तरनाक होते हैं. सांप के काटे का तो डाक्टर के पास इलाज है लेकिन सिंधी का काटा पानी तक नहीं मांगता है. उनकी बातों में ये सिंधी कोई और नहीं, स्वयं लालकृष्ण आडवाणी होते थे. भाजपा के दूसरे गुट के नेता मुरली मनोहर जोशी को एक हेड क्लर्क बुलाते थे. यह गुट आडवाणी के नज़दीक था. उन्हें लगता था कि जोशी को पार्टी का अध्यक्ष बना कर बहुत बड़ी ग़लती की गई है. जोशी उसके लायक नहीं हैं, क्योंकि उनमें नेतृत्व करने का गुण है ही नहीं, उनकी मानसिकता एक हेडक्लर्क की है. दोनों नेताओं का एक दूसरे पर कीचड़ उछालने का सिलसिला दो दशकों से चला आ रहा है. आने वाला वक्त भाजपा के लिए आसान नहीं है. चुनाव के बाद पार्टी के अंदर नेतृत्व को लेकर महाभारत होनी तय है.

दिल्ली के बाबू

दिलीप चेरियन

सरकारी बाबू रिटायरमेंट के बाद ख़तरे में

योजना आयोग का आने वाला प्रस्ताव बड़े कर्मचारियों के सेवानिवृत्त होने के बाद की योजनाओं को संकट में डाल सकता है. इस बात से कर्मचारी दुखी हैं, क्योंकि इस प्रस्ताव से सचिव स्तर से सेवानिवृत्त कर्मचारियों को नियामक (रेगुलेटरी) संस्थाओं में मिलने वाली नौकरियां अब उनको नहीं मिल पाएंगी. पैनल का मानना है कि वर्षों से चली आ रही इस परंपरा से विचारों का गतिरोध पैदा होता है और साथ ही नियमित संस्थाओं की स्वतंत्रता को भी हानि पहुंचाती है. प्रस्तावित योजना में सुझाव दिया गया है कि सचिवों के रिटायर होने और नए पद पर नियुक्त होने के बीच दो वर्ष का अंतराल होना चाहिए. दूसरे विशेषज्ञों ने भी पैनल की इस बात का समर्थन किया है. पूर्व डीओटी सचिव नृपेंद्र मिश्र को रिटायर होने के एक साल पूरा होते न होते उन्हें ट्राई का अध्यक्ष चुन लिया गया था. इसी तरह ऊर्जा मंत्रालय सचिव एके बासु को भी नियुक्त किया गया था. कॉरपोरेट मंत्रालय सचिव अनुराग गोयल को अभी हाल ही में कंपीटिशन कमीशन ऑफ इंडिया के बोर्ड का सदस्य बनाया गया है. ताज्जुब की बात है कि गोयल को चुनने वाली कमेटी के सदस्यों में से एक नाम खुद अनुराग गोयल का था. दूसरे सचिव द्वारा इस बात पर रोशनी डालने के बाद इस पद के लिए उनके आवेदन को ष्टारिज़ किया गया था. सरकार का निजी क्षेत्रों से कुशल और पेशेवर लोगों को नियामक संस्थाओं पर नियुक्त करना महज बातों तक ही सीमित है, क्योंकि उनके चहेते सरकारी कर्मचारी तो पहले से ही इन पदों को अपने नाम कर चुके है.

धक्का या ग़लती

केंद्रीय और भारतीय रिज़र्व बैंक के बाबू इसकी उम्मीद तो बिल्कुल नहीं कर रहे थे. उत्तराखंड उच्च न्यायालय के यूसी सांरगी (जो कि महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री के भूतपूर्व प्रधान सचिव रह चुके हैं) को नाबार्ड (नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट) के अध्यक्ष पद से हटाने का फ़ैसला किसी के भी गले नहीं उतर रहा हैं. सांरगी को एक साल पहले नाबार्ड के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया था. न्यायालय की दलील है कि सांरगी का चुनाव नियमों के ख़िलाफ़ था.

नाबार्ड के नियमों के अनुसार अध्यक्ष का चुनाव वित्त मंत्रालय और भारतीय रिज़र्व बैंक की सलाह से होता है. अगर स्पष्ट रूप से देखा जाए, तो भारतीय रिज़र्व बैंक में तब राज्यपाल के पद पर आसीन रहे वाईवी रेड्डी, जो कि सर्च कमेटी के अध्यक्ष भी थे, ने शुरुआत में अध्यक्ष पद के लिए आए सभी आवेदनों को ख़ारिज़ कर दिया था. इसके बाद दूसरे चरण में वित्त मंत्रालय द्वारा सांरगी का चुनाव आख़िरकार अपने ही संभावितों की सूची में से कर दिया गया था. हालांकि सांरगी की नियुक्ति को उतराखंड में नियुक्त एक उच्च पदासीन नाबार्ड बाबू ने ग़लत ठहराया था और राज्य उच्च न्यायालय ने अब उनके दावे पर मुहर लगा दी है. सूत्रों की मानें, तो दिल्ली में भारतीय रिज़र्व बैंक और वित्त मंत्रालय के बाबुओं में इस बात के नतीजे से निपटने को लेकर काफी उथल-पुथल चल रही है. माना जा रहा है कि अब यह लोग इस मुद्दे को सर्वोच्च न्यायालय में ले जाकर चुनौती देना चाहते हैं और यह जानने की कोशिश में लगे हैं कि राज्य के उच्च न्यायालय को सरकारी नियुक्ति पर फ़ैसला सुनाने का अधिकार है या नहीं. अब इसका नतीजा चाहे जो भी निकले, इतना तो तय है कि इस तूफान में घिरे बाबू का भविष्य जरूर अधर में लटक गया है.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

1 जॉनी जोसेफ जाएंगे दिल्ली

महाराष्ट्र के 1972 बैच के प्रशासनिक सेवा (आईएएस) अधिकारी जॉनी जोसेफ का नाम केंद्र में नियुक्ति के लिए प्रस्तावित किया गया है. वह पिछले दो वर्षों से महाराष्ट्र के सचिव पद पर कार्यरत हैं और इसी वर्ष मई महीने में सेवानिवृत्त होने वाले हैं.

2 साउथ ब्लॉक में नया बाबू

नेशनल डिफेंस कॉलेज में वरिष्ठ निदेशक के पद पर काम कर रहे तमिलनाडु कैडर के 1981 बैच के प्रशासनिक सेवा के अधिकारी एके गुप्ता रक्षा मंत्रालय के ज्वाइंट सेक्रेट्री के पद पर नियुक्त किए गए हैं. इससे पहले इस पद की ज़िम्मेदारी मध्यप्रदेश के 1987 बैच के अधिकारी अजय टिकरी पर थी.

3 नहीं मिला ट्राई को मुखिया

ट्राई के चेयरमैन पद के लिए नाम तय करने में थोड़ा वक्त लग सकता है. फिलहाल दावेदारी तीन से चार लोगों के बीच ही है. इनमें वित्त मंत्रालय के सचिव अरुण रामानाथन, उपभोक्ता मंत्रालय के सचिव यशवंत भावे, दूरसंचार आयुक्त सदस्य के श्रीधर और बीएसएनएल के पूर्व निदेशक (वित्त) एसडी सक्सेना हैं.

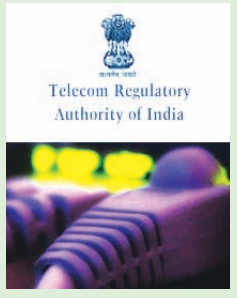

4 कौन जाए इस्लामाबाद?

पाकिस्तान के इस्लामाबाद में भारतीय दूतावास में प्रथम सचिव (फर्स्ट सेक्रेटरी) नियुक्त करने के लिए भारत सरकार उपयुक्त अधिकारी की तलाश कर रही है. कई के नाम प्रस्तावित किए गए हैं, पर पद की संवेदनशीलता और ज़रूरतों को लेकर इनके चयन में सतर्कता बरती जा रही है. इस वजह से अधिकारी के चयन में थोड़ा वक्त लग रहा है.

5 ईसी से एफसी तक

निर्वाचन आयोग के सचिव ऋत्विक रंजनम पांडे वित्त मंत्रालय के अंतर्गत आनेवाले तेरहवें वित्त आयोग में निदेशक पद पर कार्यभार संभालेंगे. वह कर्नाटक कैडर से 1998 बैच के आईएएस अधिकारी हैं.

राजशाही की ओर बढ़ता राजस्थान

■ लोकतंत्र का खोखलापन उजागर करता चुनाव

हाल में राजस्थान की पृष्ठभूमि पर बनी फ़िल्म गुलाल में एक संवाद है, 'गुलाल असली चेहरे को छिपा देता है'. यह संवाद राजस्थान में पंद्रहवीं लोकसभा के चुनाव में चरितार्थ होता दिख रहा है. यहां लोकतंत्र के महापर्व में कई ऐसे उम्मीदवार हैं, जिनके चेहरे ऐसे ही गुलाल से रंगे हैं. इनकी आस्था लोकतंत्र के बजाय राजतंत्र में है, जो अभी भी उन परंपराओं और मान्यताओं में विश्वास करते हैं, जिनमें प्रजा इन्हें देवता के समान मानती है. राजस्थान के लोकसभा चुनाव में इस बार क़रीब आधा दर्जन उम्मीदवार ऐसे हैं, जो पुरानी रियासतों के राजघरानों से संबंध रखते हैं. इनमें से 4 को कांग्रेस व 2 को भारतीय जनता पार्टी ने टिकट दिया है. कांग्रेस से टिकट पाने वाले उम्मीदवार हैं, कोटा-बूंदी संसदीय सीट से महाराज विजयराज सिंह, जोधपुर से महाराज गज सिंह की बहन चंद्रेश कुमारी, अलवर से महाराज भंवर जितेंद्र सिंह और जयपुर-ग्रामीण से भरतपुर राजघराने के महाराज व पूर्व सांसद विश्वेंद्र प्रताप सिंह की पत्नी दिव्या सिंह. भाजपा ने जिन राजघरानों को संसदीय प्रत्याशी बनाया है, इसमें झालावाड़-बारां सीट से पूर्व मुख्यमंत्री व धौलपुर राजघराने की महारानी वसुंधरा राजे सिंधिया के पुत्र दुष्यंत सिंह व आदिवासी बहुल भीलवाड़ा सीट से बढ़नौर ठिकाने के महाराज बृजेंद्र पाल सिंह शामिल हैं. दुष्यंत सिंह पहले भी झालावाड़-बारां सीट से सांसद रह चुके हैं. लोकतंत्र में सभी को बराबर का दर्जा दिया गया है. यहां राजा व रंक को चुनने व चुने जाने दोनों का अधिकार मिला हुआ है. इस लिहाज से देखें तो इन राजा-रानियों की उम्मीदवारी कहीं से भी ग़लत नहीं. वैसे भी भारत में आज़ादी के बाद लोकतंत्र की जो अवधारणा सामने आई, इसमें कमज़ोर तबक़े के लिए कोई स्थान नहीं था. जिसके पास ताक़त है, उसी का अधिकारों पर नियंत्रण होता है. वह चाहे बाहुबली हो, उद्योगपति हो या उनके वंश का अंश हो. इसके लिए लोकतंत्र के प्रति आस्था जैसी किसी तरह के शर्त की ज़रूरत नहीं. राजस्थान में राजघरानों की उम्मीदवारी कुछ ऐसी ही है. दरअसल इन राजाओं का वर्तमान व इतिहास देखें तो यह कहना क़तई झूठ नहीं होगा कि इनकी लोकतंत्र में न तो कभी आस्था रही है और न ही अभी है. इन्हें आज भी महाराज, हिज़ हाइनेस से कम का संबोधन स्वीकार नहीं. इनके दिलो-दिमाग़ में भरी राजशाही ठसक इन्हें आज भी आम समाज से कोसों दूर किए हुए है. चुनाव लड़ना इनके लिए कोई जनप्रतिनिधित्व का माध्यम नहीं बल्कि अपने अहम को संतुष्ट करने व सत्ता नियंत्रण में भागीदारी का एक जरिया है.

आज़ादी के साठ साल बाद भी राजस्थान में जब दोनों कथित राष्ट्रवादी पार्टियों को ऐसे राजाओं को चुनाव लड़ाने की ज़रूरत महसूस हो रही है, तो ऐसे में सहज ही समझा जाना चाहिए कि यह संघर्ष के बाद मिले आधे-अधूरे लोकतंत्र को किस दिशा में ले जाना चाहते हैं. वैसे तो राजस्थान में राजाओं के चुनाव लड़ने का इतिहास कोई नया नहीं है. आज़ादी के बाद अपनी रियासतें छिन जाने के बाद तो विभिन्न राजाओं ने बाक़ायदा एक पार्टी भी गठित की. 1952 के पहले आम चुनावों में स्वतंत्र पार्टी से कई महाराजा चुनाव लड़े और संसद पहुंचे. 1960 के दशक में राजस्थान विधानसभा में भी एक समय ऐसा था, जब यह कांग्रेस पर हावी थे. इस समय पूरे देश में भले ही कांग्रेस की लहर थी लेकिन राजस्थान में कौन जनता का प्रतिनिधित्व करेगा, यह इस क्षेत्र की रियासत के राजा-महाराजा ही तय करते थे. राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के लिए अभी भी राजघरानों का आर्शीवाद मिल जाना जीत की गारंटी मानी जाती है. आज़ादी के 60 साल बाद भी दोनों दलों में राजाओं को अपनी ओर करने की होड़ मची है. जहां विकास के नाम पर जयपुर, जोधपुर, उदयपुर व कोटा जैसे कुछ बड़े शहर फिल्मों व चित्रों में भले ही बड़े लुभावने लगते हैं, यहां का ग्रामीण जीवन आज भी उतना ही कठिन है. ग्रामीण क्षेत्रों में पानी जैसी मूलभूत ज़रूरत के लिए सरकारी गोलियां भी अपने सीने में सहनी पड़ती है. मंदी की मार में राजस्थान की हैंडीक्राफ्ट की एक हज़ार से ज्यादा ईकाइयां बंद पड़ी हैं. उद्योग नगरी के नाम से प्रसिद्ध कोटा में पिछले दो दशक से सैकड़ों कारखानों में ताले लग चुके हैं. अब यहां गिने-चुने उद्योग ही बचे हैं. पिछले दो सालों में गुर्जर आरक्षण आंदोलन में क़रीब सौ लोगों ने अपनी जान गंवाई है. इस पृष्ठभूमि में राजस्थान में पंद्रहवीं लोकसभा के चुनाव काफी महत्व-पूर्ण हो गए हैं. इस बार के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस राजाओं को टिकट देने में सबसे आगे रही है. लेकिन इसके उम्मीदवारों की पृष्ठभूमि पर गौर करें, तो इनमें से ज़्यादातर का इतिहास ही कांग्रेस विरोध के इर्दगिर्द रहा है. जोधपुर रियासत से शुरू करें, तो यहां के राजा शुरू से ही कांग्रेस के विरोधी रहे हैं. हांलाकि यहां की इसकी प्रत्याशी चंद्रेश कुमारी काफ़ी समय से कांग्रेस में सक्रिय हैं.

दुष्यंत सिंह

इससे पहले वह हिमाचल प्रदेश में मंत्री भी रह चुकी हैं. इनके बड़े भाई महाराजा गज सिंह, जो आज इनके लिए प्रचार करते घूम रहे हैं, भाजपा के क़रीबी माने जाते हैं. पूर्व विदेश मंत्री जसंवत सिंह कभी गज सिंह के निजी सहायक हुआ करते थे. बाद में जसवंत सिंह ही महाराज को राजनीति में लाए. अलवर से कांग्रेसी उम्मीदवार महाराज भंवर जितेंद्र सिंह भी एक दशक पहले तक कांग्रेस के कट्टर विरोधी थे. इनकी उम्मीदवारी से कांग्रेस कार्यकर्ता भी हतप्रभ थे. जयपुर ग्रामीण सीट से उम्मीदवार दिव्या सिंह भरतपुर राजघराने की महारानी हैं. इससे पहले वह एक बार भाजपा के टिकट पर भी संसद पहुंच चुकी हैं. इनके पति विश्वेंद्र सिंह ने पिछले ही विधानसभा चुनाव में भाजपा से बग़ावत कर कांग्रेस का दामन थामा था. इससे पहले विश्वेंद्र, पूर्व मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे के राजनीतिक सलाहकार थे. कोटा का राजघराना पिछले कई दशक से राजनीतिक तटस्थता बनाए था. जानकारों की मानें तो इन राजाओं की कांग्रेस से खुन्नस कोई नई बात नहीं है. आज़ादी के बाद से ही इन्हें लगता है कि कांग्रेस ने ही इनके राजपाट और अधिकार छीने हैं. इनमें से ज़्यादातर राजा वैचारिक रूप से संघ व हिंदू महासभा जैसे कट्टर हिंदूवादी संगठनों के क़रीबी रहे हैं. आज भी यह संगठन राजाओं की राजतांत्रिक व्यवस्था का समर्थन करते हैं. 1947 में विभाजन के वक्त हज़ारों मुसलमानों को यहां राजाओं के इसी हिंदूवादी विचारधारा, कांग्रेस से खुन्नस व रियासत छिनने के आक्रोश का निशाना बनना पड़ा. जोधपुर, अलवर, धौलपुर व भरतपुर रियासत के राजाओं ने हिंदू महासभा से मिलकर हज़ारों मुसलमानों का क़त्ल कराया. वैसे भी राजस्थान में राजतंत्र की जड़ें, लोकतंत्र से कहीं ज़्यादा पुरानी हैं. यहां राजतंत्र और सामंतशाही की जकड़न अभी भी कमज़ोर नहीं हुई है. फ़िलहाल एक बदलाव जो ग़ौर करने लायक है, वह ये कि 1947 से पहले यहां के राजा कभी अंग्रेज़ों के तो कभी मुग़ल शासकों के क़दमों तले रहे, लेकिन आज़ादी मिलने के बाद आज तक लोकतंत्र और राजनीतिक पार्टियां इन राजाओं के क़दमों तले अपनी सार्थकता तलाश रही हैं. 'ऐसे लोगों को टिकट देने के कारणों की खोज करने के लिए हमें ज़्यादा दूर जाने के ज़रूरत नहीं पड़ेगी. इसे केवल 60 साल के लोकतंत्र की सफलता-असफलता में तलाशा जा सकता है.'' यह कहना है राजस्थान के वरिष्ठ साहित्य-संस्कृतिकर्मी शिवराम का. वह कहते हैं कि राजस्थान में अभी तक कोई ऐसी पार्टी या नेता नहीं उभर सका है, जो जन आकांक्षाओं को समझ सके. यह अभाव ही वर्तमान में पार्टियों को जनता से दूर राजाओं की चौखट तक ले जा रहा है. जोधपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ सूरज पालीवाल कहते हैं कि 60 साल से यहां लोकतंत्र व राजतंत्र का चोली दामन का साथ रहा है, लेकिन 3 करोड़ मतदाताओं को आज तक पेट भर रोटी, कपड़ा, मकान नसीब नहीं हो सका. हर चुनावों में इन्हें दो विकल्प मिलता है, जिसमें से एक चुनते हैं लेकिन वास्तव में वह इनका नेता नहीं होता. पालीवाल हाल के विधानसभा चुनावों का उदाहरण देते कहते हैं कि इस बार भाजपा ने बीकानेर सीट से राजघराने की राजकुमारी सिद्ध को अपना उम्मीदवार बनाया. राजकुमारी इससे पहले कभी महलों से बाहर नहीं निकली थीं. बीकानेर के लोगों के पास कोई विकल्प नहीं था. लोगों ने इन्हें 'अहो भाग्य' की तरह स्वीकारा, इनकी आरती उतारी और इन्हें जिता कर विधानसभा भेज दिया. वहीं दातारामगढ़ सीट से किसान नेता अमराराम को चुनाव जिताया. इस सीट पर भाजपा व कांग्रेस दोनों को बुरी तरह से हार का सामना करना पड़ा. यहां दोनों ही तरह के उदाहरण हैं. इसलिए यह कहना कि राजा लोकप्रिय हैं, इसलिए चुनाव जीत जाते हैं, ठीक नहीं होगा. वरिष्ठ पत्रकार व भारतीय जनसंचार संस्थान के एसोसिएट प्रोफेसर आनंद प्रधान का कहना है कि दो दशक से चुनावों में ऐसे उम्मीदवारों की संख्या बढ़ी है, जिनका पहले कभी राजनीति में कोई सीधा हस्तक्षेप नहीं रहा है. वह अपने-अपने क्षेत्र के नामी, ज़रूरी नहीं कि लोकप्रिय, रहे हैं. इसमें महाराजाओं से लेकर उद्योगपति, फिल्मी सितारे, खिलाड़ी विशेषकर क्रिकेट के, को टिकट देने का चलन सा चल गया है.

राजस्थान भी इन बदलावों से दूर नहीं है. यहां की राजनीति दिन ब दिन आम जनता से दूर होती जा रही है. राजनीतिक दलों के पास ऐसा नेता नहीं हैं, जिन्हें आम जनता अपना मान सके. ऐसे में यह ज़रूरी हो जाता है कि पार्टियां ऐसे लोगों को चुनाव में पेश करे, जिनका राजनीति से दूर तक का कोई रिश्ता नहीं हो. इनको लेकर आम जन कोई सवाल नहीं खड़ा कर सके. इसी राजनीति के तहत इस बार के चुनावों में बड़े पैमाने पर राजाओं, फिल्मी सितारों व खिलाड़ियों को टिकट दिया गया है. संभव है, राजस्थान में चुनाव लड़ रहे सभी राजा चुनाव जीत जाएं क्योंकि इन सीटों पर इनके अलावा कोई दूसरा विकल्प भी नहीं है. इस विकल्पहीनता का ही फ़ायदा देश में सत्ता चलाने वाले और पूंजीपति मिल कर उठा रहे हैं. इस विकल्पहीनता के लिए ज़रूरी है कि कोई जनतांत्रिक आंदोलन खड़ा ही न हो. इसके लिए नीति-निर्धारकों को ऐसे ही राजाओं की ज़रूरत होगी, जो इनके अनुसार काम कर सके. ज़रूरत पड़े तो महारानी वसुंधरा राजे की तरह छोटी-छोटी मांगों को लेकर उठने वाली आवाज़ को गोली से दबा सके.

विजय प्रताप

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 5 & 6 संयुक्तांक

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

84 दंगों के लिए अटल व आडवाणी को भी पकड़ो

मुक़दमा तो लालकृष्ण आडवाणी और अटल बिहारी वाजपेयी पर चलना चाहिए. '84 दंगों के असल गुनहगार तो वे ही हैं . दरबार साहिब पर हमला करने के लिए इंदिरा गांधी को इन्होंने ही उकसाया था. हमारे संविधान में जुर्म करने वाला और किसी को जुर्म के लिए उकसाने वाला बराबर का दोषी माना जाता है. आज वही आडवाणी छाती पीट रहे हैं, जैसे उनसे ज़्यादा पीड़ा किसी को नहीं. उन्हें अगर इतना ही दर्द है, तो मनमोहन सिंह को सिख होने के नाते प्रधानमंत्री क्यों नहीं मान लेते?

रूबी अरुण

दिल्ली गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के अध्यक्ष परमजीत सिंह सरना ये बातें कहते–कहते आवेश से कांपने लगते हैं. हालांकि पेशा इनका भी सियासत ही है और उंगलियां इनकी ओर भी उठती रही हैं, पर '84 के दंगों का ज़ख़्म उनकी आंखों से रिसता हुआ साफ़ नज़र आता है. सरना कहते हैं कि जगदीश टाइटलर और सज्जन कुमार को तो सज़ा मिलनी ही चाहिए. हालांकि महज जगदीश टाइटलर और सज्जन कुमार को दोषी ठहराने और उन्हें सज़ा देने से इंसाफ़ नहीं मिलने वाला. उन तमाम गुनहगारों को सज़ा मिलनी चाहिए, जिन्होंने '84 में सिखों का क़त्लेआम किया. लगभग चार हज़ार सिखों की जान सिर्फ जगदीश टाइटलर और सज्जन कुमार ने नहीं ली. देशभर में क़त्लो–गारत सिर्फ इन्हीं दोनों ने तो नहीं मचाई, तो बाक़ी के हत्यारे कहां गए? तीन दिनों तक मार–काट मची रही. सैकड़ों लोग इसमें भागीदार थे. कहां हैं वे? उन ताक़तों को किसी भी सरकार ने बेनक़ाब क्यों नहीं किया? जो ज़ुल्म नाज़ियों ने किया, जो ज़ुल्म हिटलर ने किया, जो ज़ुल्म जापान ने कोरिया पर किया, वह दुखद इतिहास बन गया. सिखों के साथ भी वैसा ही हुआ, तो उसका हिसाब कौन देगा?

वैसे देखा जाए, तो इस दंगे के लिए किसी भी पार्टी को माफी नहीं मिल सकती. सरकारें कभी भी इस मसले पर गंभीर नही रहीं, चाहे वह एनडीए या आईके गुजराल की सरकार रही हो या चंद्रशेखर या वीपी सिंह की. या फिर पिछली कांग्रेस सरकार. उन्होंने इस बात की तफ्तीश करने की ज़हमत तक नहीं उठाई कि किन लोगों ने सिखों का खून बहाया. दंगों के बाद सरकार ने जिस अंदाज़ में मारवाह कमेटी और रंगनाथ मिश्र आयोग का गठन किया, वह बड़ा ही ओछा काम था.

परमजीत सरना पूछते हैं कि इनके ऊपर मुक़दमा कौन चलाएगा. इस कांग्रेस सरकार ने तो संसद में माफी तक मांगी, पर वाजपेयी सरकार को तो इस बात का ख़्याल तक नहीं रहा. आडवाणी किसी तरह प्रधानमंत्री बन जाएं, इसके लिए तिकड़म कर रहे हैं. कह रहे हैं कि जब सत्ता में आएंगे, तो सिखों को इंसाफ़ दिलाएंगे. जब छह साल एनडीए केंद्र में रही, तब तो उसने कुछ किया नहीं. अब क्या ख़ाक करेंगे. जब दिल्ली में इनकी सरकार थी, तब तो ये सोये रहे. अब, जब इन्हें हमारे वोट की दरकार है, तो हमारे ज़ख़्मों को कुरेद रहे हैं. और फिर इसी महीने सहानुभूति का ये खेल क्यों खेला जा रहा है. छह–आठ महीने पहले ये सारी बातें क्यों नहीं हुई? सियासत का यह खेल अब नहीं चलेगा. सभी दोषी हैं इसमें. न तो कांग्रेस, न ही भाजपा और न ही कोई अन्य पार्टी बेदाग है. अकाली दल जो खुद को सिखों का हमदम कहती है, ने भी सिर्फ धोखा ही किया है. सिखों के दर्द पर अपनी राजनीति की रोटी सेंकी है. प्रहलाद सिंह चंडोक की पोती की शादी में इसी जगदीश टाइटलर के साथ सभी ने एक साथ मिल कर एक टेबल पर खाना खाया था. चेम्सफोर्ड क्लब में टाइटलर को कृपाण और सरोपा देकर सम्मानित किया गया. क्या तब टाइटलर दोषी नहीं थे? पाक–साफ थे?

अकाली दल के नेता अवतार सिंह मक्कड़ कहते हैं कि सज्जन कुमार और जगदीश टाइटलर का टिकट कटने के बाद भी उनके ख़िलाफ़ विरोध–प्रदर्शन जारी रहेगा. जो दंगा–पीड़ित हैं, उनका मुक़दमा लड़ने के लिए वकील भी मुहैया कराए जाएंगे. वे चुप बैठने वाले नहीं. सिखों के ख़िलाफ़ हमेशा से ज़ुल्म होते आए हैं. कभी कामा गाटा मारू तो कभी जालियांवाला बाग़. और जहां तक '84 के दंगों का प्रश्न है, तो इसका जख़्म तो कभी नहीं भरने वाला.

वैसे देखा जाए तो ये जितने हैं, सब अपनी सियासी ख़्वाहिशों के मारे हैं. सन 93 में ओंकार सिंह थापर ने कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ा, तब उन्हें याद नहीं आए टाइटलर और सज्जन. तब '84 के दंगों का दर्द कहां चला गया था. बहरहाल यह चूंकि राजनीति का चरित्र है लिहाज़ा राजनीतिक पद लेने की ख़ातिर भुला दिया सब कुछ?

सरना सवाल करते हैं कि 25 साल के बाद तो इन्हें याद आया है कि दंगा–पीड़ितों को इंसाफ़ दिलाने के लिए कुछ किया जाए. पैनल बनाया जाए. अब आप ही बताएं ये केस कब लड़ेंगे?

सवाल ये भी खड़ा है कि केंद्र सरकार के 268 करोड़ रुपए अभी भी पंजाब सरकार के पास पड़े हैं. वह अभी तक क्यों नहीं बांटे गए? अगर पंजाब सरकार को वाकई सिखों से सहानुभूति है तो क्यों नहीं वह दंगों के दौरान ब्लैक लिस्टेड कर दिए गए सिखों को अपने देश लौटने की इजाज़त दे देती. पंजाब सरकार ने ही तो यह काम किया था. न तो बरनाला की सरकार ने ऐसा किया, न ही बादल की सरकार ने ऐसा करने की ज़रूरत समझी. वे इसकी बात तक नहीं कर रहे. सरना के मुताबिक़, लगभग चार हज़ार सिख मारे गए. अरबों रुपयों का नुक़सान हुआ. सवाल ये भी है कि क्या सिर्फ दो ही जनों ने किया ये सब? कानपुर के 'सज्जन कुमार' और 'जगदीश टाइटलर' कहां गए. बोकारो, रोहतक और देहरादून के कहां गए? ये दोनों तो सिर्फ दिल्ली में थे. रकाबगंज गुरुद्वारा के ग्रंथी कहते हैं कि किसी को हमदर्दी नहीं है हमारे साथ. सब सत्ता का खेल है, पर सिख किसी के मंसूबे सफल नहीं होने देंगे. हमें मारने वाला तो ख़ुद ही ख़त्म हो गया. भाजपा और कांग्रेस भी हमें ख़त्म करने का ख़्वाब लेकर मिट जाएंगी. जो सिख है, वो हिंदुस्तान का सिर है. अगर सिर गया तो सारा शरीर गया, तो हम न सिर जाने देंगे न ही शरीर को मिटने देंगे. सिख फार जस्टिस के प्रधान गुरु पतवंत सिंह कहते हैं कि अगर इंसाफ़ पर चोट हो रही है, तो इसका जवाब वोट है. राजनीतिक दलों को अपनी बेईमानी का ख़ामियाज़ा तो चुकाना ही पड़ेगा. सिख दंगा पीड़ित एक्शन कमेटी के अध्यक्ष करनैल सिंह कहते हैं कि '84 दंगों में हुए क़त्लेआम के दोषियों को दिया गया क्लीन चिट कभी बर्दाश्त नही किया जा सकता.

परमजीत सिंह सरना फरमाते हैं कि ये ज़रूर है कि कांग्रेस सरकार ने जो माफी मांगी है, उसका सिख समुदाय पर बेहद सकारात्मक असर पड़ा है. इस माफी ने ज़ख्म पर मरहम का काम किया. राहुल गांधी ने दरबार साहिब जाकर माथा टेका. सिखों के ज़ख़्मों को सहलाने की कोशिश की. सोनिया गांधी ने सिख कौम के व्यक्ति को प्रधानमंत्री बनाया. सीबीआई की टीम को गवाहों का बयान लेने अमेरिका भेज कर कांग्रेस ने अपने गुनाहों के प्रायश्चित के तौर पर कुछ तो किया. बाक़ी पार्टियां तो सिवाए ढोंग के कुछ नहीं कर रहीं. कोई पार्टी ऐसी नहीं है, जो ये सवाल उठाए कि वे कौन लोग हैं, जिन्होंने दबाव डाल कर गवाहों को मुकरने पर मजबूर किया. क्यों नहीं उनकी तलाश की जाती है. सवाल वक़्त की मांग है और वाज़िब भी. आने वाली सरकारों को इसका जवाब देना ही होगा. वरना अब ये कौम वोटों की सियासत करने वाले मौकापरस्त और बेगैरत नेताओं को कभी माफ नहीं करेगी.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

टूट गई इंसाफ़ की आस

85 साल के मुखिया मंशा सिंह और उनकी 80 साल की पत्नी देवी कौर के चेहरे पर झुर्रियों से ज़्यादा दर्द की लकीरें हैं. आंखों में अभी भी वह ख़ौफनाक मंज़र क़ैद है, जब उनके सामने ही दंगाइयों ने उनके चार जवान बेटों के टुकड़े–टुकड़े कर दिए थे. सन '84 के दंगों के बाद भले ही तारीख़ें बदलती चली गई हों पर इनके लिए तो वक्त वहीं थम गया है. ये ज़िंदा तो हैं, पर इनके रहने और होने का अहसास ख़त्म हो गया है. तिलक विहार कालोनी में अपने बाक़ी तीन बेटों के साथ रहने वाले मंशा सिंह का वजूद आज भी उस दिन को याद कर थरथरा उठता है. देवी कौर बार–बार अपने सीने को मसलती हैं, जैसे कि किसी नासूर पर पड़ी पपड़ियां उतार रही हों. मारे गए चारों बेटों दर्शन सिंह, अमर सिंह, निर्मल सिंह और कृपाल सिंह का अक्स अभी भी आंखों में झिलमिलाता है. पड़ोस में रहने वाले आत्मा सिंह के साथ दंगों के दरम्यान हुई वारदात तो कलेजा चाक कर के रख देती है. एक–दो नहीं बल्कि परिवार के पूरे बीस लोगों के टुकड़े दंगाइयों ने कर दिए थे. कोई भी तो नहीं बचा परिवार में. चाचा, भाई, मामा, मौसा, साला, ससुर सभी को दंगाइयों ने दौड़ा–दौड़ा कर मारा था. सैकड़ों परिवार हैं इनके जैसे. जो अपनी ज़िंदगी का एक–एक दिन इसी आस में बिता रहे हैं कि 25 साल बाद ही सही उन्हें न्याय मिले. उनके दर्द का इंसाफ हो. 9 साल का मनप्रीत हो या 12 साल का सोनू. कहते हैं कि दोषियों को तो सज़ा दिलाकर रहेंगे. इन्होंने हमारे दादा जी–दादी मां को मारा है. हम इन्हें नहीं बख़्शेंगे. हमारा सबकुछ बर्बाद हो जाए यह तो मंज़ूर है पर दंगाइयों को किसी हाल में माफ़ी नहीं मिलनी चाहिए. इनकी तो अब बस एक ही तमन्ना है कि जो भी दोषी हैं, उन्हें तो फांसी की सज़ा मिले, बस.

चुनावी घोषणापत्रों में मुस्लिम मुद्दे

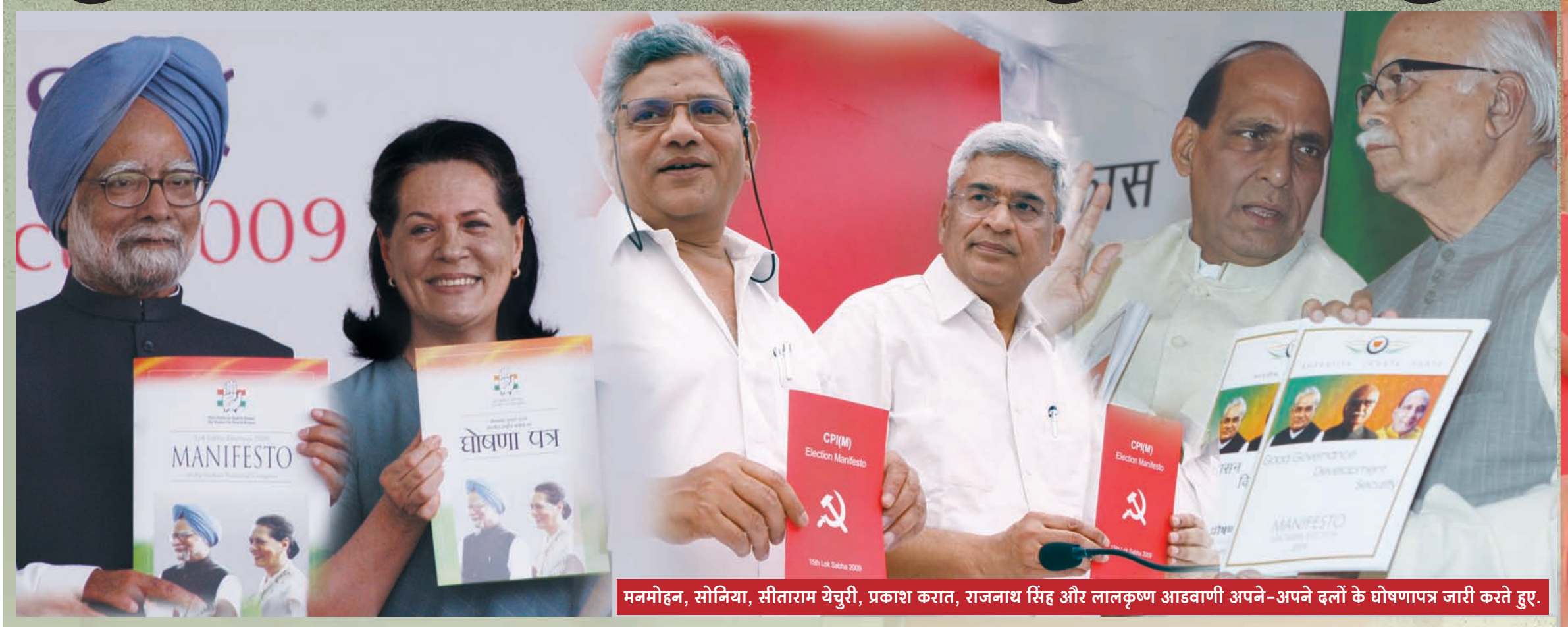

मनमोहन, सोनिया, सीताराम येचुरी, प्रकाश करात, राजनाथ सिंह और लालकृष्ण आडवाणी अपने-अपने दलों के घोषणापत्र जारी करते हुए.

ए यू आसिफ़

अब तो प्राय: सभी पार्टियों के चुनावी घोषणापत्र आ चुके हैं. हर बार की तरह इस बार भी मुस्लिम मुद्दे इनमें मौजूद हैं. दिलचस्प बात तो यह है कि अन्य पार्टियों पर मुस्लिम तुष्टीकरण का आरोप लगाने वाली भाजपा ने भी मुस्लिम मुद्दों को विशेष रूप से लिया है. मुस्लिम मुद्दों के संदर्भ में सच्चर कमेटी की रिपोर्ट का हवाला लगभग सभी पार्टियों ने दिया है. इससे इतना तो प्रतीत होता ही है कि सच्चर रिपोर्ट के बाद मुद्दों के प्रति राजनीतिक पार्टियों के विचार या समीकरण कुछ न कुछ तो बदले ही हैं और घोषणापत्र की हद तक सकारात्मक परिवर्तन आया है. वैसे यह प्रश्न स्वाभाविक है कि व्यावहारिक तौर पर इस पर कितना अमल हो सकेगा एवं सत्ता में आने के बाद कोई पार्टी या गठबंधन इसे कितनी गंभीरता से ले पाएगा?

कांग्रेस का दावा है कि उसकी नेतृत्व वाली यूपीए की सरकार के समय सच्चर कमेटी बनी एवं उसकी रिपोर्ट आई. उसके बाद इसकी सिफारिशों पर अमल दर आमद जारी है. यह विधिवत सभी वर्गों एवं समुदायों को समान अवसर प्रदान करने हेतु एक विशिष्ट आयोग की स्थापना की बात करती है. इसका यह भी दावा है कि केवल मैट्रिक पूर्व, मैट्रिक पश्चात एवं व्यावसायिक कोर्सों के लिए गत दो वर्षों में लगभग चार लाख स्कॉलरशिप मुसलमानों को दिए गए हैं, जिनमें से आधे से अधिक छात्राओं को मिले हैं. इसी दौरान जून 2006 में अल्पसंख्यकों के मद्देनज़र प्रधानमंत्री का 15 सूत्री कार्यक्रम भी आया और देश के 90 से अधिक अल्पसंख्यक जनसंख्या वाले ज़िलों में विशेष विकास पैकेज लागू करने का एलान किया गया. कांग्रेस केरल, कर्नाटक एवं आंध्रप्रदेश का उदाहरण देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यकों के आरक्षण की बात करती है एवं मौलाना आज़ाद एजुकेशनल फाउंडेशन को बजट में दी जाने वाली रक़म को दुगना कर देने के अलावा वक्फ डेवल्पमेंट कॉरपोरेशन एवं राष्ट्रीय यूनानी विश्वविद्यालय की स्थापना का आश्वासन देती है. स्मरण रहे कि 1977 में केंद्र से कांग्रेस के अपदस्थ होने के बाद जनता पार्टी सरकार ने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग पारसी नेता मीनूमसानी की अगुवाई में बनाया था जो कि अब तक क़ायम है. कांग्रेस ने इस सिलसिले में एक क़दम और आगे बढ़ाते हुए मुस्लिम नेता अब्दुररहमान अंतुले के अधीन मई 2004 में सत्ता में आते ही अल्पसंख्यकों के पृथक मंत्रालय का गठन कर दिया. वैसे यह अलग बात है कि उपरोक्त आयोग एवं मंत्रालय दोनों ही बिना दांत के हैं और क्रियान्वयन के अधिकार से अभी तक वंचित हैं.

> **मज़े की बात यह है कि कांग्रेस ने सच्चर रिपोर्ट के संबंध में जो क्रेडिट लिया है उसे नकारने की चेष्टा एनडीए और लेफ्ट फ्रंट में शामिल पार्टियां अपने-अपने घोषणापत्रों में करती नज़र आ रही हैं. भाजपा इस अवसर पर सच्चर रिपोर्ट को आंख खोलने वाली और मुसलमानों की इस दयनीय स्थिति के लिए कांग्रेस को ही ज़िम्मेदार बताती है.**

मज़े की बात यह है कि कांग्रेस ने सच्चर रिपोर्ट के संबंध में जो क्रेडिट लिया है उसे नकारने की चेष्टा एनडीए और लेफ्ट फ्रंट में शामिल पार्टियां अपने-अपने घोषणापत्रों में करती नज़र आ रही हैं. भाजपा इस अवसर पर सच्चर रिपोर्ट को आंख खोलने वाली और मुसलमानों की इस दयनीय स्थिति के लिए कांग्रेस को ही ज़िम्मेदार बताती है. भाजपा नेतागण राजनाथ सिंह और लालकृष्ण आडवाणी का घोषणापत्र के हवाले से यह एलान बहुत ही दिलचस्प है कि अल्पसंख्यकों को भय दिखाकर नहीं बल्कि प्रेम के बल पर समर्थन चाहिए, मुसलमानों को हम इंसान मानते है वोट बैंक नहीं, मुस्लिम बच्चों विशेषकर बच्चियों के लिए आधुनिक शैक्षिक सहजताएं प्रदान की जाएंगी एवं अति पिछड़े मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में कंप्यूटर केंद्र खोले जाएंगे.

भाजपा के घोषणापत्र में वक्फ संपतियों पर से अनधिकृत कब्ज़ा हटाने एवं अन्य भाषाओं समेत उर्दू के विकास के लिए दिखाई गई दिलचस्पी सभी को चौंकाती है. भाजपा की इन बातों को सुनकर कोई भी व्यक्ति उसके बारे में अपनी पूर्व राय पर विचार करना चाहेगा एवं उसे धर्मनिरपेक्ष कही जानेवाली पार्टियों से भिन्न अब नहीं मानने को तैयार होगा. तब यह भी संभव है कि मुस्लिम मतदाता यह सोचे कि अब क्या ज़रूरत है कि 1991 के आमचुनाव के समय से भाजपा के विरोध में किसी भी धर्मनिरपेक्ष पार्टी के उम्मीदवार को वोट देने की परंपरा जारी रखी जाए. इस दृष्टि से कांग्रेस के सुरक्षा, सम्मान एवं खुशहाली के नारे की तरह भाजपा का सुशासन, विकास एवं सुरक्षा की घोषणा आकर्षक लगती है लेकिन जैसे ही मतदाताओं की नज़र घोषणापत्र के पृष्ठ 39 पर राम मंदिर निर्माण के अलावा पृष्ठ 36 पर संविधान में जम्मू कश्मीर को विशेष दर्जा देने वाली धारा 370 को हटाने एवं पृष्ठ 29 पर समान सिविल कोड पर पड़ती है तो वह अचानक चौंक जाता है. क्योंकि यह वही एजेंडा है, जो कि ग्यारह वर्ष पूर्व 1998 के घोषणापत्र में सम्मिलित किया गया था और इनके विवादास्पद होने के कारण भाजपा ने 1999 एवं 2004 को आम चुनाव के समय अपना घोषणापत्र जारी ही नहीं किया और अपने घटक दलों की दिलजोई करते हुए न सिर्फ एनडीए के घोषणा पत्र पर निर्भर ही नहीं रहे बल्कि उसकी पाबंदी भी की. इन विवादास्पद मुद्दों की ग्यारह वर्ष पश्चात वापसी बहुत ही जोश व खरोश से नहीं हुई है, तभी तो इसके चुनावी घोषणापत्र में यह मुद्दे उभरे हुए नहीं हैं. ध्यान से पढ़ने पर यदि कोई राममंदिर एवं धारा 370 को देख भी ले, तो उसे समान सिविल कोड को खोजना सहज नहीं होगा. प्रश्न यह भी है कि भाजपा को अपने इन प्रिय मुद्दों को इतने दबे हुए अंदाज़ में वर्तमान घोषणापत्र में शामिल करने का कारण क्या था? जाहिर सी बात है कि कारण इसके अलावा कोई और हो नहीं सकता कि सामने दिखने वाले मुद्दे कुछ और हों और भीतर छुपा हुआ मुद्दा कुछ और. वामपंथी दलों में भाकपा एवं माकपा (मार्क्सवादी) दोनों ने ही अपने अपने घोषणापत्र में मुस्लिम मुद्दों के प्रति कांग्रेस पर अपना क्रोध उतारा है. सच्चर रिपोर्ट के संबंध में इसके विचारों में भी इसकी झलक मिलती है. भाकपा कहती है कि अल्पसंख्यकों से वायदे किए गए. सच्चर रिपोर्ट ने यह दर्शाया कि मुसलमानों की आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति दलितों समेत मान्य पिछड़े समुदाय से भी बदतर हैं. सच्चर रिपोर्ट के अनुसार ठोस उपायों पर अमल तो दूर यूपीए सरकार संसद में इस रिपोर्ट पर बाज़ाब्ता बहस तक का प्रबंध न कर सकी. इसका यह भी आरोप है कि यह रंगनाथ मिश्रा आयोग रिपोर्ट को संसद में डेढ़ वर्ष बाद भी प्रस्तुत नहीं कर पाई. इसका आश्वासन है कि सच्चर एवं रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्टों की सिफारिशों पर अमल दर आमद के लिए वृहत प्लान नौकरियों एवं अनेक आर्थिक स्कीमों को लागू करते समय भेदभाव को समाप्त करने हेतु क़ानूनी रास्ता निकाला जाएगा और बैंक से क़र्ज़ दिलाने की विशेष चेष्टा की जाएगी, अल्पसंख्यकों के शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अल्पसंख्यक बहुल ब्लॉकों में विद्यालयों को खोलने हेतु 20 प्रतिशत एसएसए राशि दी जाएगी. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का भी यूपीए सरकार पर यही आरोप है कि यह अल्पसंख्यकों के संबंध में सच्चर रिपोर्ट की ख़ास-ख़ास सिफ़ारिशों को लागू करने में असफल रही. यह कहती है कि इसकी ओर से मुस्लिम समुदाय के लिए एक विशेष योजना को तैयार करने की सलाह नहीं मानी गई. यह वादा करती है कि अल्पसंख्यकों के विरुद्ध किए जा रहे भेदभाव को समाप्त करने के लिए एक समान प्रदान करने वाला आयोग बनाएगी, सच्चर रिपोर्ट की सिफारिशों पर अमल करने हेतु आदिवासियों के लिए विशेष योजना की तरह मुसलमानों के लिए भी विशेष प्लान बनाए जाएंगे, मुस्लिम बहुल ज़िलों में नौकरियों, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्रों में विशेष क़दम उठाए जाएंगे, रंगनाथ मिश्र रिपोर्ट को प्रकाश में लाया जाएगा एवं इस पर खुलकर बहस कराई जाएगी, मुस्लिम छात्राओं में शिक्षा को आम करने एवं बढ़ाने हेतु स्कॉलरशिप एवं होस्टल का विशेष प्रबंध होगा, विद्यालयों में उर्दू की शिक्षा को बेहतर बनाया जाएगा एवं इसी के साथ-साथ उर्दू में पाठ्यपुस्तकों को आकर्षक रूप में छापा जाएगा और उर्दू शिक्षकों के रिक्त स्थानों की पूर्ति की जाएगी. वैसे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी दलित इसाइयों एवं दलित मुसलमानों को भी आरक्षण देने की बात करती है. इसका यह वादा है कि सांप्रदायिक दंगों के ख़िलाफ़ एक वृहत क़ानून बनाएगी, 2002 की गुजरात नरसंहार जैसे सांप्रदायिक दंगे के पीड़ितों को जल्दी इंसाफ़ एवं उचित मुआवज़ा दिलाया जाएगा एवं जस्टिस श्री कृष्णा आयोग रिपोर्ट को लागू कराया जाएगा. इसी प्रकार इसके बहुत सारे वादे हैं. इसी प्रकार अन्य पार्टियों के भी दावे और वादे हैं. यह दावे और वादे हर बार चुनाव के समय किए जाते हैं. यह सिलसिला जारी रहता है लेकिन पिछड़ा मुसलमान इन्हीं दावे और वादे के बीच झूलता रहता है और किसी शायर की इस पंक्ति को गुनगुनाता भी रहता है कि *वह वादा ही क्या जो वफा हो गया.*

मेरी दुनिया.... ...धीर

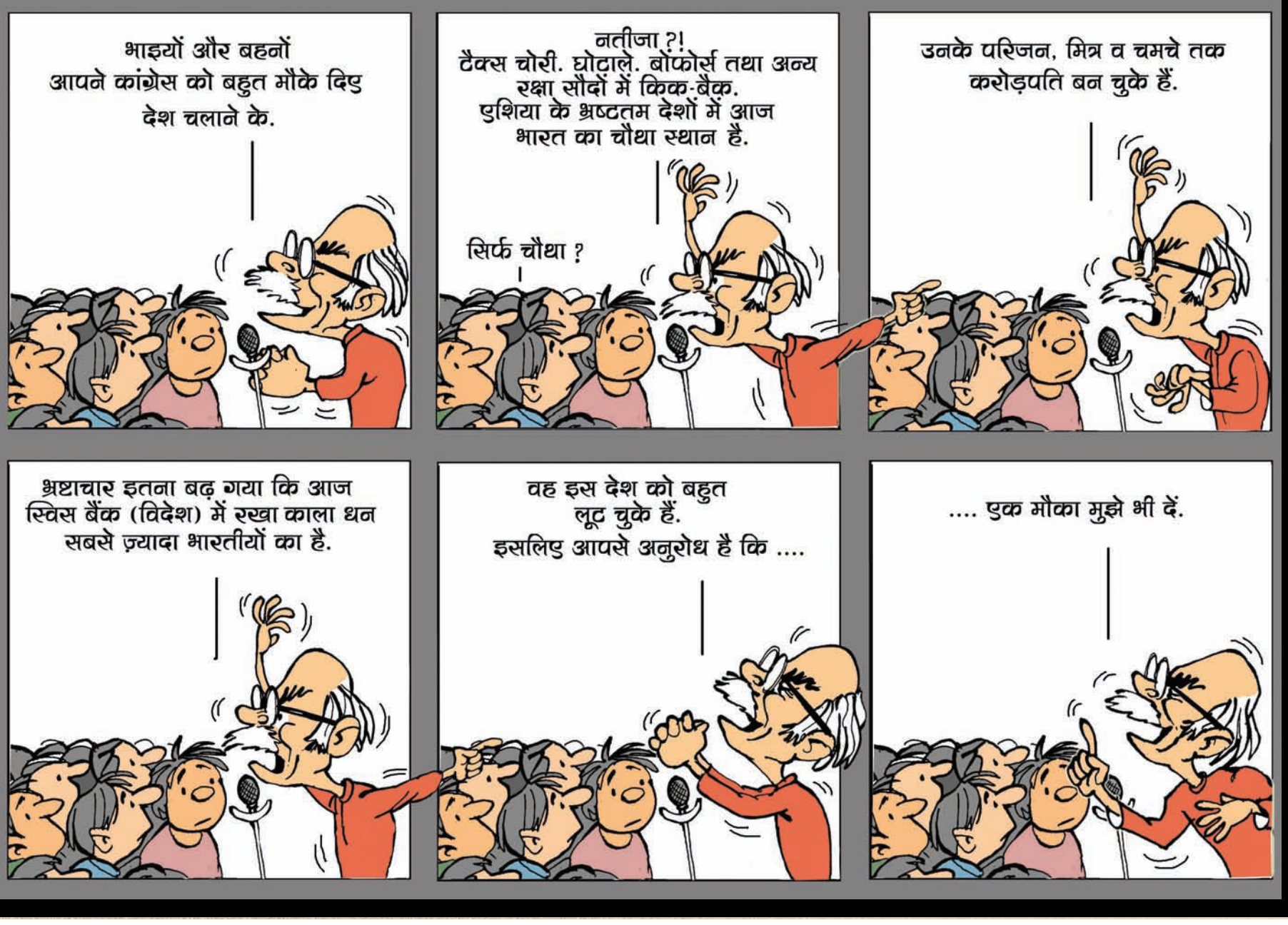

feedback.chauthiduniya@gmail.com

क्या हुआ तेरा वादा...

राजनीतिक दल बेशर्मी से झुठलाते हैं अपना घोषणापत्र

व्यालोक

चुनावी मौसम है. नेताओं के दौरे हैं. हवाई वायदे हैं. साथ ही घोषणापत्र तो हैं ही, हरेक पार्टी के अलग-अलग. जनता को बेवकूफ बनाने का यह सिलसिला पहले आम चुनाव से शुरू हो चला था, जो आज 2009 ईस्वी तक जारी है. क्या हमें यह सवाल नहीं पूछना चाहिए कि हरेक पार्टी सत्ता में आने के बाद जो काम करने का वादा अपने घोषणापत्र में करती है, वास्तव में उनमें से कितने पर अमल होता है, या सब कुछ बिल्कुल हवा-हवाई बन कर रह जाता है. साथ ही, दूसरा सवाल यह भी उठता है कि सारी पार्टियां सत्ता में आने के बाद तो बहुत कुछ करने का दावा और वायदा करती हैं, लेकिन आख़िर उसी तरह कोई भी पार्टी विपक्ष में या सत्ता से दूर होने की हालत में कोई वैकल्पिक एजेंडा जनता के सामने क्यों नहीं रखती. लोकशाही में जीत हरेक दल की तो होगी नहीं. कोई न कोई पार्टी तो हारेगी ही, तो फिर आख़िर एक वैकल्पिक योजना रखने में हर्ज ही क्या है, जिसमें बताया जाए कि चुनाव में सत्ता न पाने की हालत में कोई भी पार्टी क्या करेगी. ऐसी कोई भी मिसाल हमें आज तक देखने को तो नहीं मिली है. सबसे बड़ी दो पार्टियां, कांग्रेस और भाजपा, भी महज रस्म अदायगी ही करती हैं, फिर बाक़ी दलों की तो बात ही क्या करें. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जब अपनी पार्टी का 2009 चुनाव के लिए घोषणापत्र जारी कर रहे थे, तो वह अपनी सरकार की उपलब्धियां गिनाते नहीं थक रहे थे. कहते-कहते हालांकि उनकी जबान फिसल ही गई. वह यह भी कह गए कि उनकी सरकार अपने लक्ष्य से 20 प्रतिशत दूर रह गई. प्रधानमंत्री जो बोल गए, उससे यह तो साबित हो ही गया कि यूपीए कई वायदों से चूक गई. जिन बातों को वह अपनी उपलब्धि मान कर अपनी पीठ खुजा रही है, दरअसल वह उसके मूल कार्यक्रम से है ही नहीं. जिन मुद्दों और वायदों को लेकर कांग्रेस दिल्ली की गद्दी तक पहुंच पाई थी, वह कहीं न कहीं छूटे रहे. इस सरकार ने भी यह बात पक्की कर दी कि भले ही चुनावी माहौल में ये पार्टियां मोटे-मोटे दावों का घोषणापत्र जारी कर दें, लेकिन एक बार संसद में पहुंच कर उसे पलटने की ज़हमत भी नहीं उठातीं. एक नज़र उन वायदों पर जो वायदे ही रह गए. ये कांग्रेस के उन वायदों की सूची है, जो उसने अपने घोषणापत्र में प्रकाशित किए थे कि सत्ता पाने की हालत में वह इन कामों को पूरा करेगी.

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

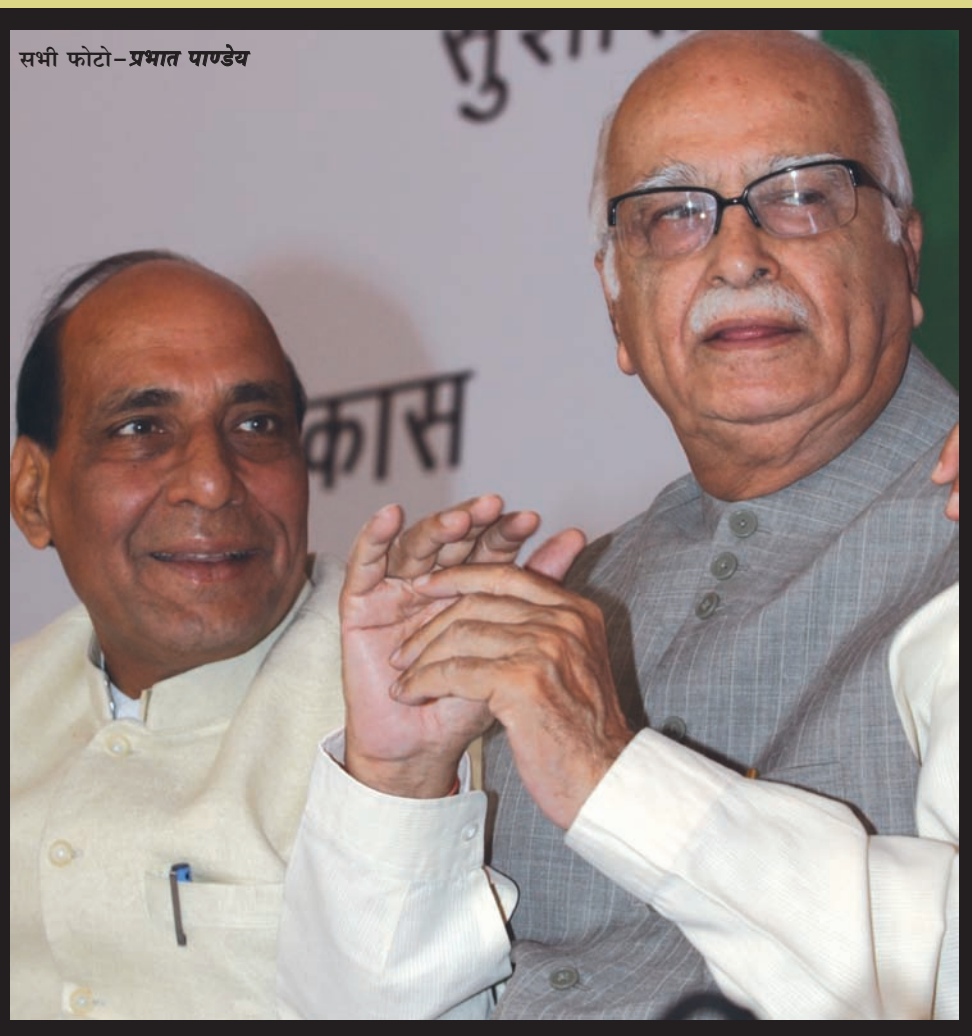

महिला आरक्षण बिल

यह एक ऐसा मुद्दा रहा है, जिसने कई सालों से सभी बड़ी पार्टियों के घोषणापत्रों में जगह तो बनाई है, लेकिन आज भी ठोस कार्रवाई की बाट जोह रही है. सभी पार्टियां इस बिल को लटकाने का आरोप दूसरों पर मढ़ देती है. दोनों बड़े गठबंधन इस बिल को पारित कराने के वादे करते रहे हैं, लेकिन पिछली दोनों लोकसभाओं (तेरहवीं और चौदहवीं) में यह बिल सदन के पटल से आगे नहीं बढ़ पाया. महिला आरक्षण को यूपीए के समान न्यूनतम कार्यक्रम (सीएमपी) में जगह मिली. लेकिन इसी के कुछ घटकों ने ही बिल के संसद में पेश होते ही ऐसा हो-हल्ला मचाया कि बिल उस हंगामे के शोर में कहीं खो गया. अब यह बिल किसी संसदीय समिति की फाइलों में अटका पड़ा है.

लोकपाल बिल

यह बिल एनडीए सरकार के वादों में भी शामिल था. हां, यह बात अलग है कि पिछली यूपीए सरकार भी इस बिल को संसद में नहीं ला पाई. तमाम वायदे तो हुए, मगर लोकपाल साहब कहीं नहीं दिखे. सरकार के उच्च पदों पर फैले भ्रष्टाचार को रोकने की यह कोशिश फ़िलहाल क़ानून मंत्रालय की फाइलों में गर्द और धूल में फंसी हुई है.

सांप्रदायिक हिंसा बिल

यह कांग्रेस के पिछले घोषणापत्र का सबसे अहम वायदा था. 2004 में कांग्रेस ने यह वायदा किया था कि अगर वह सत्ता में आई तो सांप्रदायिक हिंसा को रोकने और गुजरात जैसी घटनाओं के दुबारा होने से बचने के लिए एक क़ानून बनाएगी. इस चुनावी वायदे को यूपीए के सीएमपी में भी जगह मिली, लेकिन यह वायदा बस हवाई बात बनकर ही रह गया. अपने ही कुछ सहयोगियों, खासकर वामदल के विरोध के डर से सरकार कभी इस क़ानून के लिए हिम्मत ही नहीं जुटा पाई.

शिक्षा पर जीडीपी का 6 प्रतिशत खर्च

यह एक ऐसी चुनावी घोषणा थी जिसपर अमल करने की सबसे अधिक ज़रूरत थी. इस पर अमल हमारे मुल्क के लिए शायद सबसे फायदेमंद होता. लेकिन यूपीए ने इस मौके को भी गंवा दिया. शिक्षा पर अब भी कुल जीडीपी(सकल घरेलू उत्पाद) का बस साढ़े तीन प्रतिशत खर्च हो रहा है. सबसे बुरी हालत तो उच्च शिक्षा की है जिसपर बस 0.37 प्रतिशत खर्च हुआ. सरकार देश की शिक्षा को भूल गई. इसके अलावा स्वास्थ्य पर खर्चा करने के तीन प्रतिशत के वायदे को सरकार नहीं निभा पाई.

सुरक्षा

सुरक्षा की बात भी क्या करें, यूपीए ही क्या, तमाम दल अपने घोषणापत्रों में जाने कब से पुलिस और सेना में सुधारों की बात करते रहे हैं. होता कुछ नहीं है. सेना में समान पेंशन को लेकर सरकार के ख़िलाफ़ असंतोष है. आतंरिक सुरक्षा के नाम पर मुंबई हमले के बाद भले ही आनन-फानन में एनआईए (नेशनल इन्वेस्टिगेटिंग एजेंसी) का गठन हो गया हो, लेकिन उसकी हक़ीक़त ही सरकार की मंशा की पोल खोल देती है. पूरे तीन महीने बाद इसे एक अदद कमरा तो नसीब हुआ, लेकिन प्रशासनिक ढांचा नदारद है. आठ अधिकारियों की नियुक्ति तो कर दी गई है, लेकिन उनको अपना काम ही पता नहीं है. वह बस सुबह 10 से पांच बजे तक बाबूगीरी की रस्म अदायगी कर देते हैं. इसके अलावा कई और बड़े मुद्दे थे, जो कांग्रेस के घोषणापत्र में थे, जिन्हें चुनावी प्रचार में जम कर भुनाया गया और फिर वह यूपीए के साझा न्यूनतम कार्यक्रम (सीएमपी) में भी ज़रूर दिखाई दिए. लेकिन जब सरकार में आए, तो इन मुद्दों को भुला दिया गया. इनमें किसान पुनर्वास, कार्यस्थल पर महिलाओं के ख़िलाफ़ प्रताड़ना और पिछड़ों के लिए निजी नौकरियों में आरक्षण जैसे विषयों पर क़ानूनों की बात थी, जो सत्ता में आने पर तथाकथित बड़े मुद्दों के सामने कहीं खो गई.

बीजेपी भी कम नहीं

भाजपा तो ख़ैर एक क़दम आगे ही निकली. उसने तो 11 साल बाद इसी बार अपना घोषणा पत्र जारी किया है. 2004 में भाजपा एक विज़न डॉक्युमेंट लेकर आई थी और एनडीए का घोषणापत्र जारी किया था. इसमें उनका सबसे बड़ा मसला था विदेशी मूल के व्यक्ति को देश के सर्वोच्च पद पर बैठने से रोकने वाला क़ानून बनाना. जाहिर है, देश की बाकी समस्याएं भाजपा के लिए काफी मायने नहीं रखती थी. इस क़ानून का निशाना सोनिया थीं, यह भी आसानी से समझ में आता है. ख़ैर, भाजपा इंडिया शाइनिंग के शोर में ही दब कर रह गई और जनता ने उसे नकार दिया. यहीं रचनात्मक विपक्ष की बात सामने आती है, भाजपा इसमें भी पूरी तरह असफल साबित हुई. भाजपा सदस्यों की सदन में महज 63 फीसदी उपस्थिति रही. साल भर संसद में हुई बहस पर अगर गौर करें, तो 30 फीसदी बहसों पर एक सांसद का प्रतिशत बैठेगा. 13 फीसदी भाजपा सांसदों ने तो किसी बहस में (पूरे पांच साल में) शिरक़त ही नहीं की. यह किसी भी पार्टी के मुक़ाबले अधिक है. भाजपा सांसदों ने बात-बात पर सदन का बहिष्कार भी किया. इसी पार्टी के एक माननीय सांसद बाबूभाई कटारा को कबूतरबाज़ी के मामले में जेल भेजा गया और संसद से बर्खास्त भी किया गया. अब इस प्रदर्शन को शर्मनाक नहीं तो और क्या कहेंगे.

सीपीएम का सच

हालांकि हमाम में सभी नंगे हैं. चार सालों तक सरकार को समर्थन देने वाले वाम दलों का प्रदर्शन तो और भी हैरतनाक़ है. सीपीएम ने अपने मेनिफेस्टो में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दुरुस्त करने, निजीकरण की मुख़ालफत और बीमा और बैंकिंग में विदेशी निवेश का विरोध करने की बात अहम थी. वाम दल सरकार में प्रभावी स्थिति में भी थे. हालांकि हुआ क्या? ढाक के तीन पात. हड़ताल के अधिकार को क़ानूनी जामा पहनाने, एस्मा के विरोध, जीडीपी का छह फीसदी शिक्षा और पांच फीसदी स्वास्थ्य पर ख़र्च करने की बात भी सीपीएम के घोषणापत्र में थी. चार सालों तक सरकार में रहने के बाद इन वादों का क्या हुआ? सीपीएम के घोषणापत्र में था कि किसी भी विकास कार्य में विस्थापन से पहले पुनर्वास की व्यवस्था हो. इसके बदले राष्ट्रमंडल खेलों के नाम पर 30 गांवों को उजाड़ा गया. सिंगुर और नंदीग्राम भी हुआ. यह बातों का दुहराव ही होगा कि इस बार के घोषणापत्र से पार्टियां जनता-जनार्दन को क्या देने वाली हैं. सब्जबाग दिखाए जा रहे हैं, जनता को एक बार फिर से बेवकूफ बनाने की साज़िश भी चल रही है.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

अपनों के हुए शिकार, अब करेंगे प्रतिकार

अजेय सिंह

मुहब्बत, अदावत, वफ़ा, बेरुखी इन सारी चीज़ों का चेहरा इस लोकसभा चुनाव में बखूबी देखने को मिल रहा है. कहीं मौक़ापरस्त नेताओं का मिलन है, वहीं ये सियासत अपनों की जुदाई का सबब भी बन रही है. एक तरफ जदयू के दिग्गज नेता रहे दिग्विजय सिंह हैं, तो दूसरी तरफ मंडल मसीहा वीपी सिंह के बेटे अजेय सिंह हैं. दोनों ही दोस्तों के सितम के मारे हैं.

अजेय सिंह को लोजपा प्रमुख रामविलास पासवान से दग़ा मिली है, तो दिग्विजय सिंह को बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने हाशिए पर डाल दिया है. अब दोनों ही अपने बूते ज़ोर आज़माईश में लगे हैं. रामविलास पासवान ने वीपी सिंह के नाम का फ़ायदा उठाने की गरज से बड़े धूम-धड़ाके से अजेय सिंह का अपनी पार्टी में स्वागत किया. फिर अपना हाथ ख़ींच लिया. वहीं दिग्विजय सिंह को जॉर्ज फर्नांडिस के नज़दीकी होने की सज़ा मिली है. अजेय सिंह ने जन मोर्चा प्रत्याशी के तौर पर फतेहपुर से नामांकन दाखिल कर दिया है.

अब वो कितनी मज़बूती से अपनी मौजूदगी जता पाते हैं, यह तो बाद की बात है, लेकिन उनके नामांकन के समय उमड़ी भारी भीड़ ने एक उम्मीद ज़रूर जगाई है. वहीं दिग्विजय सिंह को बांका से भारी जनसमर्थन मिल रहा है. अजेय सिंह के नामांकन के समय उमड़े जनसैलाब ने न सिर्फ अजेय सिंह की हौसला अफ़जाई की, बल्कि राजा मांडा के भी

फोटो-*सुभाष बधिया*

समर्थकों से घिरे दिग्विजय सिंह

खुद नारे लगाए. चिलचिलाती धूप में लोग घंटों खड़े रहे. उन्होंने वीपी सिंह की जयजयकार से फतेहपुर की फिज़ा को झंकृत कर दिया. अजेय सिंह ने कहा कि मरते समय ताऊ (वीपी सिंह) कह गए थे कि फतेहपुर की सेवा हमेशा करते रहना. फतेहपुर हमेशा ताऊ के दिल में रहा. वो देश में रहे या परदेस में, फतेहपुर को कभी नहीं भूले. इस मौक़े पर कांग्रेस के पूर्व विधायक अमरनाथ उर्फ अनिल के पुत्र समर सिंह अपने सैंकड़ों समर्थकों के साथ शामिल हुए. राजद की उत्तर प्रदेश की पूरी ईकाई अध्यक्ष कैलाश नाथ यादव सहित जनमोर्चा में शामिल हो गई. नामांकन सभा में दूरदराज से आए किसानों ने अजेय सिंह को हर तरह से समर्थन का भरोसा दिलाया. अभी जो स्थिति दिख रही है उस लिहाज़ से यहां अजेय सिंह का पलड़ा भारी दिख रहा है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सुरेंद्र अग्निहोत्री

सलाखों के पीछे की यातना से भागे बच्चे

बच्चों की जेल में एक दिन
मार पड़ते-पड़ते
चलना-फिरना हो जाता कठिन
कटे पंख-सा पिंजरे में फड़फड़ाता
भागने का करता रहता जतन
ष्ठ तरे फुंफकारते रहते हैं इर्द-गिर्द
पाशविक बलात्कार होता प्रतिदिन
आंखों पर पट्टी बांध कर ले जाते
चीष्ठ के बिना दर्द करता सहन
रुंधे कंठ से किससे कहें आज हम
अधिकारों का रोज़ होता दमन

कवि अग्निवेद

झांसी मंडल की एकमात्र 'बच्चा जेल' ललितपुर ज़िले में है और पिछले कुछ दिनों से सुर्खियों में है. तीन साल बाद एक बार फिर यहां से कुछ बाल अपराधी फरार हो गए हैं. इस बार हत्या, लूट, बलात्कार और गैंगस्टर जैसी गंभीर वारदात के आरोपी सुरक्षाकर्मियों पर हमला करके निकल भागे. इधर जेल में बंद वाक़ी बाल बंदियों का आरोप है कि जेलर मिश्रा की प्रताड़ना की वजह से बंदी भागने को मज़बूर हुए हैं. जबकि जेलर ने इन आरोपों को सिरे से नकार दिया. पुलिस ने बहरहाल, एक फरार बंदी को पकड़ लिया गया है. पुलिस ने भागे हुए सभी आरोपियों के ष्ठि लाफ़ सीमावर्ती इलाक़ों की पुलिस को सतर्क कर दिया है. सूत्र बताते हैं कि पिछले तीन सालों में छह बार क़रीब 70 बाल क़ैदी इस जेल की ज़जीरों को चकमा दे चुके हैं. अभी अभी भागे क़ैदी जिस वक्त जेल का फाटक पार कर रहे थे, उस समय दो कांस्टेबल वहां मौजूद थे. पुलिस अधीक्षक ने तत्काल प्रभाव से इन दोनों को निलंबित कर दिया है.

कैसे भागे क़ैदी

बुंदेलखंड के इस एकमात्र संप्रेक्षण गृह में फिलहाल 15 बाल अपराधी गंभीर वारदात के आरोप में बंद थे. रोज़ की तरह सुबह क़रीब 7 बजे तक सुरक्षाकर्मी रामकुमार, जो कि जालौन ज़िले के उरई के रहने वाले हैं, सफाई करने के लिए खुशीराम नाम के बालबंदी को बाहर निकाला. उसी वक्त पहले से घात लगाए अंदर बैठे बाल बंदियों ने सुरक्षाकर्मी रामकुमार की आंखों में मिर्ची डाल दी और रॉड से जानलेवा हमला कर दिया. इसके बाद मुख्यद्वार से 10 बाल बंदी भाग निकले. उस वक्त बालबंदियों की सुरक्षा में एक होमगार्ड भी मौजूद था, लेकिन वो भाग रहे बालबंदियों को रोकने में नाकाम रहा. पहले भी इस संप्रेक्षण गृह से बाल क़ैदी फरार हुए हैं. 21-22 अप्रैल 2004 को 19 बाल क़ैदी इस संप्रेक्षण गृह से भाग चुकेहैं. इसके बाद 6 अगस्त 2005 को भी 10 बच्चे भागे थे. 9 अगस्त 2005 को भी 6 बच्चे भागे. 30 अगस्त 2005 को 21 बच्चे भागे थे. यानी सिर्फ 2005 में 37 बच्चे इस जेल से फरार हुए. 17-18 नवंबर 2006 को भी 7 बच्चे भागे थे.

सुरक्षा में सुराख

घटनास्थल का निरीक्षण करने से जो तथ्य सामने आए हैं, उसके अनुसार जेल की व्यवस्था पर भी सवाल उठ रहे हैं. पत्रकारों को बांदा निवासी एक बंदी ने बताया कि जेल में तैनात जेलर हिटलरी स्वभाव के हैं और आए दिन बालबंदियों से जानवरों जैसा व्यवहार करते हैं. समय-समय पर बंदियों को डराने केलिए कहा जाता है कि कभी भी उन्हें ज़िला जेल में भेजा जा सकता है. शिक़ायतों की फेहरिस्त लंबी है. जानकारी के मुताबिक जेल में नहाने, कपड़े धोने का साबुन, फिनायल आदि ज़रूरी चीज़ों की आपूर्ति नहीं हो पा रही है. साथ ही क़ैदी पुनर्वास के लिए चल रही योजना बंद है.

बाल और किशोर अपराधियों को सही राह पर लाने के लिए किशोर न्याय अधिनियम 2 के तहत राजकीय संप्रेक्षण गृह बना. भावावेश में ग़लत राह पर चल पड़े बच्चों और किशोरों को अपराध के दलदल से निकालने और उनके पुनर्वास के लिए ये बनाए गए. लेकिन उत्तरप्रदेश में अधिकार केवल क़ानून की किताबों और सरकारी फाइलों में ही महफूज़ रह गए हैं.

जबकि सुप्रीम कोर्ट ने अपने फ़ैसलों में साफ कर दिया है कि संविधान में सबको जीने और सुरक्षित रहने का अधिकार है. और सुरक्षा केवल शरीर या सामग्री की नहीं बल्कि मानवीय मूल्यों की भी होनी चाहिए. साफ है कि झांसी मंडल की ये बालजेल इन कसौटियों पर खरी नहीं उतरती और यहां मानवाधिकार का खुलेआम उल्लंघन होता है.

पूर्वोत्तर में आम चुनाव
लहू बहेगा सड़कों पर

पूर्वोत्तर राज्यों में देश के दूसरे राज्यों की तरह ही आम चुनाव की तैयारी शुरू हो चुकी है और विभिन्न राजनीतिक पार्टियां उम्मीदवारों की सूची जारी करने के बाद प्रचार अभियान में जुट गई है. माना जा रहा है कि चुनाव के दौरान पूर्वोत्तर राज्यों में उग्रवादी संगठन बड़े पैमाने पर हिंसक गतिविधियों को अंजाम दे सकते हैं. असम नागालैंड, मणिपुर और त्रिपुरा में सबसे अधिक हिंसक घटनाएं हो सकती हैं और हिंसा की वजह से चुनाव की प्रक्रिया बुरी तरह प्रभावित हो सकती है. असम में कई उग्रवादी संगठन सक्रिय हैं, जो चुनाव में रुकावट डालने की कोशिश कर सकते हैं. चुनाव से पहले हिंसा की शुरुआत हो चुकी है. 24 मार्च को उत्तर कछार ज़िले में उग्रवादियों ने तीन व्यक्तियों की हत्या कर दी. तिनसुकिया ज़िले में उल्फा के वार्ता समर्थक गुट के सदस्य रवीन गोगोई और लुईत बैश्य की हत्या कर दी गई. उत्तर कछार में रेल की पटरी को नुक़सान पहुंचाया गया. तेजपुर शहर में ग्रेनेड विस्फोट किया गया, जिसमें बारह व्यक्ति घायल हो गए. ढेकियाजुली में रेहड़ी लगाने वाले तीन व्यक्तियों की लाश बरामद की गई. इसके बाद गुवाहटी में असमिया अष्ठ बार 'आजि' के कार्यकारी संपादक अनिल मजुमदार की हत्या कर दी गई.

असम की ब्रह्मपुत्र घाटी में उग्रवादी संगठन उल्फा को एलएनएलएफ और मल्टा के साथ सक्रिय बताया गया है. उत्तर कछार पर्वतीय ज़िले, कार्बी आंग्लांग पर्वतीय ज़िले और बराक घाटी में उग्रवादी संगठन डीएचडी (जे) के एलएनएलएफ, यूपीडीएस और एनएससीएन-आईएम सक्रिय हैं. चाय बागानों में हाल ही में नए उग्रवादी संगठन आनला का गठन किया गया है. इसी तरह बोडो स्वशासी परिषद के इलाक़े में हाल ही में गठित उग्रवादी संगठन बोडो टाइगर फोर्स क़ानून-व्यवस्था के लिए सिरदर्द साबित हो सकता है. सरकार के साथ संघर्ष विराम कर चुके उग्रवादी संगठन एनडी एफबी, एनएम सीएन, डीएचडी (एन), बिरसा कमांडो फोर्स, आदिवासी टाइगर फोर्स आदि पर भरोसा नहीं किया जा सकता. चुनाव के दौरान ये संगठन भी हिंसक गतिविधियों को अंजाम दे सकते हैं. उल्फा का वार्ता समर्थक गुट सरकार के साथ संघर्ष विराम कर चुका है और इस गुट के सदस्य सरकार की तरफ से निर्धारित शिविरों में रह रहे हैं. विपक्ष ने कांग्रेस पर आरोप लगाया है कि वह चुनाव में उल्फा के इस गुट का इस्तेमाल मतदान केंद्रों पर कब्ज़े के लिए कर सकती है. निचले असम, मध्य असम और बराक घाटी के मुस्लिम बहुल इलाक़ों में मुस्लिम कट्टरपंथी उग्रवादी संगठन एसटीएफ, मल्टा आदि चुनाव के दौरान हिंसक गतिविधियों को अंजाम दे सकते हैं. हाल ही में राज्य के विभिन्न हिस्सों में मल्टा के कई सदस्यों को गिरफ्तार किया गया. 16 जनवरी को घुबड़ी ज़िले में मल्टा के सात सदस्यों को पिस्तौल, ग्रेनेड, कारतूस और विस्फोटक पदार्थों के साथ गिरफ्तार किया गया. इसी तरह तिनसुकिया में उल्फा के एक पूर्व सदस्य के घर से पुलिस ने 55 लाख रुपए के हथियार बरामद किए.

मीडिया रिपोर्टों में बताया गया है कि बांग्लादेश के आतंकवादी संगठन हूजी असम के शोणितपुर, दरंग, बरपेटा, नगांव, ग्वालपाड़ा और घुवड़ी ज़िलों में मुस्लिम स्टूडेंट्स यूनियन की मदद से अफीम की खेती करवा रहा है. इसके अलावा जाली नोट बनाने, हथियार बनाने और मानव तस्करी का धंधा चलाने का काम भी हूजी के इशारे पर हो रहा है. असम, त्रिपुरा, मेघालय और पश्चिम बंगाल की सीमा बांग्लादेश से जुड़ी हुई है. सीमा पर पहरे का उचित इंतज़ाम नहीं होने के कारण घुसपैठियों के अलावा आतंकवादी भी आसानी से इन राज्यों में आवाजाही करते रहे हैं. पिछले दिनों बांग्लादेश में सैन्य अधिकारियों की हत्या करने वाले बीडीआर के कई जवान भारत की सीमा में घुस चुके हैं, जो पूर्वोत्तर राज्यों की सुरक्षा के लिए चुनौती बन सकते हैं. वैसे भी बांग्लादेश में एक दर्जन कट्टरपंथी संगठन सक्रिय हैं, जो पूर्वोत्तर में अपने नेटवर्क को मज़बूत कर भारत विरोधी अभियान चलाना चाहते हैं. इन संगठनों के नाम है - जमातुल मुज़ाहिद्दीन, हूजी, हिजबुल तौहीद, उलामा अंजुमन अल बैनत, हिजबुल ताहिर, इस्लामिक डेमोक्रेटिक पार्टी, इस्लामी समाज, तौहीद ट्रस्ट, जेएमजेबी, शहादत अल हिकमा, तमीरा अरदीन और अल्लाह दल. मीडिया रिपोर्टों में बताया गया है कि लश्करे तोयबा ने पूर्वोत्तर भारत में तंजीने-मोहम्मदी नाम की नई शाखा बनाई है ताकि हिंसक घटनाओं को कारगर तरीके से अंजाम दिया जा सके. इस संगठन के एक नेता अबू ताहिर को पिछले दिनों कोलकाता में एसटीएफ ने गिरफ्तार किया. माना जा रहा है कि असम में हुए सिलसिलेवार बम धमाकों में इस संगठन ने अहम भूमिका निभाई थी और आने वाले समय में भी यह संगठन विध्वंसक कार्रवाइयों को अंजाम दे सकता है. आम चुनाव के दौरान पूर्वोत्तर में सक्रिय उग्रवादी संगठन विभिन्न राजनीतिक दलों और प्रत्याशियों से धन उगाही तो करेंगे ही, इसके अलावा भारी मात्रा में धन लेकर ये संगठन किसी न किसी दल विशेष की तरफ से निजी सेना की भूमिका भी निभाएंगे. इस तरह हिंसक माहौल में स्वच्छ और निष्पक्ष मतदान संभव नहीं हो पाएगा. आम जनता यह समझती है कि राजनीतिक पार्टियां चुनाव के समय जीत हासिल करने के लिए उग्रवादी संगठनों का इस्तेमाल करती हैं और यही वजह है कि पूर्वोत्तर में उग्रवाद की समस्या कई दशकों से बनी हुई है.

असम की ब्रह्मपुत्र घाटी में उग्रवादी संगठन उल्फा को एलएनएलएफ और मल्टा के साथ सक्रिय बताया गया है. उत्तर कछार पर्वतीय ज़िले, कार्बी आंग्लांग पर्वतीय ज़िले और बराक घाटी में उग्रवादी संगठन डीएचडी (जे) के एलएनएलएफ, यूपीडीएस और एनएससीएन-आईएम सक्रिय हैं. चाय बागानों में हाल ही में नए उग्रवादी संगठन आनला का गठन किया गया है.

दिनकर कुमार

feedback.chauthiduniya@gmail.com

उत्तराखंड में दिग्गजों की प्रतिष्ठा दांव पर

लोकसभा क्षेत्रों के परिसीमन के कारण उत्तराखंड में इस बार कुछ नेताओं को अपनी परंपरागत सीट छोड़ कर दूसरे क्षेत्र तलाशने पड़े हैं. इनमें भाजपा और कांग्रेस दोनों के ही कई अहम नेता शामिल हैं।

निखिल कुमार पंत

पंद्रहवीं लोकसभा के चुनाव में उत्तराखंड की पांचों सीटों पर कई राजनीतिक दिग्गजों की प्रतिष्ठा दांव पर लगी है. यह चुनाव इन नेताओं का राजनीतिक भविष्य तो तय करेगा ही, इनमें से दो नेताओं की राजनीतिक ज़मीन का भी फ़ैसला करेगा. इसे देखते हुए ये दिग्गज प्रभावी रणनीति के साथ चुनावी समर में कूद पड़े हैं.

लोकसभा क्षेत्रों के परिसीमन के कारण राज्य में इस बार कुछ नेताओं को अपनी परंपरागत सीट छोड़ कर दूसरे क्षेत्र तलाशने पड़े हैं. इनमें भाजपा प्रदेश अध्यक्ष और पूर्व केंद्रीय मंत्री बच्ची सिंह रावत 'बचदा' व उनके परंपरागत राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी कांग्रेस के पूर्व प्रदेश अध्यक्ष हरीश रावत प्रमुख हैं.

परिसीमन से पहले हरिद्वार संसदीय सीट आरक्षित थी. वर्तमान में इस पर समाजवादी पार्टी (सपा) का कब्जा है. परिसीमन से अल्मोड़ा-पिथौरागढ़ सीट आरक्षित हो गयी है. इस सीट से हरीश रावत वर्ष 1980, 1984 और 1989 से लगातार तीन बार सांसद रहे हैं. 1991 में रावत 'राम लहर' के चलते भाजपा के जीवन चंद्र शर्मा से चुनाव हार गए थे. रावत की हार का सिलसिला आगे भी जारी रहा और वह 1996 से लगातार बचदा से चुनावी पटखनी खाते रहे. वर्ष 2004 के आम चुनाव में उनकी पत्नी रेणुका रावत भी बचदा के मुक़ाबले पराजित हो गईं. लेकिन इस बार के चुनाव ने दोनों दिग्गजों को अलग-थलग कर दिया है. बचदा को जहां भाजपा ने नैनीताल-उधमसिंह नगर सीट से चुनाव मैदान में उतारा है, वहीं रावत को कांग्रेस ने धर्मनगरी हरिद्वार से टिकट देकर उन पर दांव खेला है.

इस चुनाव में रावत और बचदा नई पिच पर खेल रहे हैं. इसलिए चुनाव परिणाम दोनों दिग्गजों की राजनीतिक ज़मीन का भी फ़ैसला करेगा. वैसे, बसपा के पूर्व मंत्री रामसिंह सैनी तथा पूर्व सांसद हरपाल साथी द्वारा बसपा को टाटा-बाय-बाय कर कांग्रेस में शामिल होने से हरिद्वार में रावत की पकड़ मज़बूत हुई है. यह संसदीय क्षेत्र बसपा का 'स्ट्रांगहोल्ड' माना जाता है.

टिहरी सीट से भाजपा की ओर से जहां अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त निशानेबाज जसपाल राणा हैं, वहीं कांग्रेस ने पर्वतपुत्र हेमवती नंदन बहुगुणा के ज्येष्ठ पुत्र विजय बहुगुणा को मैदान में उतारा है. इससे इन दोनों की प्रतिष्ठा पर भी लोगों की नज़र है. राणा भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष राजनाथ सिंह के क़रीबी रिश्तेदार भी हैं. इस कारण भाजपा के लिए यह चुनाव और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है. इस सीट पर भाजपा के बागी और बसपा के अधिकृत उम्मीदवार मुन्ना सिंह चौहान के ताल ठोंकने से मुक़ाबला रोचक होने की संभावना है. बसपा का झंडा थामने के बाद चौहान ने चुनावी रणनीति के तहत कांग्रेस और भाजपा पर वार करते हुए जनता से उन्हें जिताने की अपील की है. मुन्ना लोगों से कह रहे हैं कि भाजपा संगठन के नाम पर फर्जीवाड़ा व गोरखधंधा चल रहा है. राज्य के मुख्यमंत्री बीसी खंडूरी का गढ़ मानी जाने वाली पौढ़ी-गढ़वाल सीट पर भाजपा के प्रत्याशी तेजपाल सिंह रावत की कांग्रेस के दिग्गज व पूर्व केंद्रीय रेल राज्यमंत्री सतपाल महाराज से टक्कर है. पिछली बार महाराज के राजनीतिक शिष्य रहे रावत ने अपने गुरु को पौढ़ी लोकसभा सीट के लिए हुए उपचुनाव में पराजित किया था. रावत सैनिकों के पोस्टल बैलट के कारण लगभग पांच हज़ार मतों के अंतर से चुनाव जीते थे. इस बार भी गुरु और शिष्य अपनी परंपरागत पौढ़ी सीट से चुनाव मैदान में डटे हैं. इस सीट पर वर्ष 1991, 1998 और 1999 में भाजपा के खंडूरी का कब्ज़ा रहा है. 1996 में खंडूरी तत्कालीन कांग्रेस (तिवारी) के उम्मीदवार सतपाल महाराज से चुनाव हार गये थे. एनडी तिवारी की सरकार में पर्यटन मंत्री रहे तेजपाल सिंह रावत ने कांग्रेस छोड़ भाजपा का दामन थाम लिया था. कभी देश की राजनीति में प्रतिष्ठा की सीट कही जाने वाली नैनीताल संसदीय सीट पर इस बार कांग्रेस के सिटिंग एमपी केसी सिंह 'बाबा' का मुक़ाबला भाजपा के बचदा व बसपा के नारायण पाल से है. इस सीट पर 'वोटकटवा' के तौर पर उत्तराखंड क्रांति दल (उक्रांद) के डा नारायण सिंह जंतवाल व सपा के चौधरी प्रेम प्रकाश भी मैदान में हैं. लंबी कशमकश के बाद उक्रांद ने प्रदेश की पांचों लोकसभा सीटों पर चुनाव लड़ना तय किया है. प्रत्याशियों ने प्रचार भी शुरू कर दिया है. राज्य की अल्मोड़ा (सुरक्षित) सीट पर भाजपा के काबीना मंत्री अजय टम्टा व कांग्रेस के पूर्व विधायक प्रदीप टम्टा के बीच कड़ा मुक़ाबला है. भाजपा उम्मीदवार जहां अपनी सरकार द्वारा पिछले दो वर्षों के दौरान किए गए विकास कार्यों का बखान कर रहे हैं, वहीं प्रदीप टम्टा केंद्र की यूपीए सरकार द्वारा किए गए जनहित के कार्यों का प्रचार कर रहे हैं. उत्तराखंड में 13 मई को चुनाव के अंतिम चरण में मतदान होने हैं. इससे पहले 7 मई को आम चुनाव का चौथा चरण संपन्न हो जाएगा. चौथे चरण से पहले और बाद में उत्तराखंड में स्टार प्रचारकों की धमाचौकड़ी के कारण राष्ट्रीय दलों के चुनाव प्रचार में तेज़ी आएगी. चौथे चरण के बाद राज्य में चुनावी तस्वीर साफ होगी.

हरीश रावत

के सी सिंह

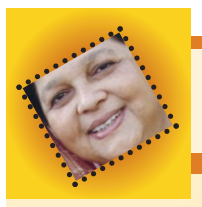

खेलने से पहले ही हारी बाज़ी

मध्यप्रदेश की सियासी बिसात पर कांग्रेस के मोहरे खेल शुरू होने से पहले ही पिटे हुए लग रहे हैं. कांग्रेस अगर यहां अपने दांव चल भी रही है, तो आधे-अधूरे मन से. राज्य की 29 सीटों में से अधिकतर पर लगता है, जैसे कांग्रेस ने पहले से ही हार स्वीकार कर ली है. अधिकतर जगहों पर तो मामला एकतरफा सा दिख रहा है.

कमलनाथ, शिवराज सिंह, ज्योतिरादित्य सिंधिया और अर्जुन सिंह

छत्तीसगढ़ में बराबरी पर छूटेगी लड़ाई

डॉ रमन सिंह

मध्यप्रदेश की ही तरह छत्तीसगढ़ में भी हालात में ज़्यादा बदलाव देखने में आएगा, इसकी कोई उम्मीद नहीं है. यहां की 11 लोकसभा सीटों में से 2 कांग्रेस के कब्ज़े में हैं जबकि 9 पर भाजपा काबिज है. मौजूदा प्रत्याशियों व चुनावी रुझान को देखते हुए कांग्रेस के पास एक सीट की बढ़त का अंदाज़ा लगाया जा रहा है, वहीं भाजपा एक सीट के नुक़सान पर चल रही है. अगर मुद्दों की बात करें, तो कांग्रेस के हाथ में केंद्र सरकार की उपलब्धियों का ही बखान होगा. यानी कांग्रेस यूपीए सरकार की सफलता वोटरों को गिनाने और समझाने की कोशिश करेगी. वहीं भाजपा ने मुख्यमंत्री रमन सिंह उर्फ चाउरबाबा को भुनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रखी है.

राज्य की कुछ सीटों पर दिलचस्प मुक़ाबला देखा जा सकता है, जिनमें बिलासपुर व दुर्ग शामिल है. बिलासपुर में भाजपा के दिलीप सिंह जूदेव तथा कांग्रेस नेता अजीत जोगी की पत्नी रेणु जोगी आमने-सामने हैं. दोनों में कांटे की टक्कर है. यहां कुल 24 निर्दलीय प्रत्याशी मैदान में हैं, जिनमें अधिकांश अनुसूचित जाति व पिछड़ा वर्ग से हैं, जो कांग्रेस का बड़ा वोट बैंक माना जाता रहा है. उधर बसपा के प्रत्याशी टीआर निराला के चलते भी रेणु जोगी की जान सांसत में है, जिन्हें अघोषित तौर पर जोगी विरोधी कांग्रेसी नेता समर्थन दे रहे हैं. यहां दिलीप सिंह जूदेव को बाहरी प्रत्याशी बता कर कांग्रेस वोटरों का मन लुभाने की कोशिश कर रही है.

उधर दुर्ग में चार प्रत्याशियों का नाम ताराचंद होने से चुनाव आयोग के साथ-साथ मतदाताओं के लिए भी परीक्षा की कठिन घड़ी है. इसमें मुख्य प्रत्याशी भाजपा के बागी नेता ताराचंद साहू हैं, जो क्षेत्र के साहू समाज का वोट बटोरने में जी-जान से जुटे हुए हैं. इसी तरह जांजगीर में कांग्रेस को भाजपा के बजाय बसपा के प्रत्याशी दाउराम रत्नाकर से कड़ा मुकाबला झेलना पड़ रहा है. यह वही सीट है, जहां से बसपा संस्थापक कांशीराम ने पहला चुनाव लड़ा और जीता था. जांजगीर की दो विधानसभा सीटों पर कब्ज़ा कर बसपा ने इस क्षेत्र में अपनी मज़बूत पकड़ का अहसास करा रखा है.

डॉ रेणु जोगी

यहां हाल ही में कांग्रेस के युवराज राहुल गांधी और भाजपा के धुआंधार नेता नरेंद्र मोदी की सभाओं में उमड़ी भारी भीड़ से दोनों ही दलों के कार्यकर्ता गदगद हैं और उन्हें उम्मीद है कि यह भीड़ वोटरों में भी तब्दील हो सकेगी. राज्य में झारखंड मुक्ति मोर्चा ने भी इस बार दखल दे दी है. यहां के आदिवासी बहुल क्षेत्रों सरगुजा, कांकेर, रायगढ़, कोरबा, बिलासपुर तथा महासमुंद में झामुमो के प्रत्याशी खड़े किए गए हैं. राज्य की राजनांदगांव सीट जो भाजपा सांसद प्रदीप गांधी के कैश ऑन कैमरा कांड के बाद कांग्रेस ने छीन ली थी, प्रतिष्ठा का सवाल बन गई है. एक ओर भाजपा इसे फिर से हासिल करने की जद्दोज़हद में जुटी है, वहीं कांग्रेस का पूरा ज़ोर वर्तमान सांसद देवव्रत सिंह को बरक़रार रखने में लगा हुआ है. यहां से कांग्रेस के पूर्व मंत्री व आदिवासी नेता गोवर्धन नेताम के बेटे प्रद्युम्न नेताम की बसपा की उम्मीदवारी कांग्रेस के गले नहीं उतर रही है. जाहिर है कि छत्तीसगढ़ के लोकसभा चुनाव में नक्सलवाद, मानवाधिकार हनन, सलवा जुडुम या किसानों की भुखमरी, जो राज्य के बाहर मुद्दा बनते दिख रहे हैं, यहां किसी भी पार्टी के चुनावी मुद्दों में जगह नहीं पा सके हैं. यहां नितांत स्थानीय व विकास के लुभावने नारों के जरिए ही वोटरों को लुभाने की क़वायद जारी है. इसमें कांग्रेस के पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है. मौजूदा सीटों में एक-दो का इज़ाफ़ा हो जाए, तो केंद्रीय नेतृत्व को अजीत जोगी की पीठ थपथपाने का मौक़ा मिल जाएगा.

इंदू सिंह

मध्यप्रदेश की सियासी जंग शुरू होने से पहले ही कांग्रेस खेमे में हाय-तौबा मची हुई है. ट्वेंटी-20 की तर्ज पर यहां ट्वेंटीनाइन-29 खेला जा रहा है. कांग्रेस टीम का पहला बल्लेबाज़ बिना कोई रन बनाए पैवेलियन वापस लौट चुका है. सच तो यह है कि राजकुमार पटेल नाम के इस सलामी बल्लेबाज़ को आउट करने के लिए भारतीय जनता पार्टी को न तो फील्डिंग जमाने की ज़रूरत पड़ी, न ही किसी फास्ट या स्पिन बॉलर की. यह तो मैदान में जाते ही हिट विकेट होकर पैवेलियन लौट आया. प्रदेश में विदिशा की अति प्रतिष्ठित जीत कांग्रेस प्रत्याशी राजकुमार पटेल की नासमझी या कथित तौर पर किसी षड्यंत्र के चलते सुषमा स्वराज की झोली में जा चुकी है. कांग्रेस की बाक़ी 28 सदस्यीय टीम में ज़्यादातर ऐसे खिलाड़ी शामिल हैं, जिन्होंने रणजी से बाहर का कोई मैच तक नहीं खेला. इसके चलते इस बात की पूरी उम्मीद है कि टीम के 24 खिलाड़ी बेहद सस्ते में अपने विकेट गंवा देंगे. रही बात बाक़ी चार की, तो उसमें भी एक सीट ऐसी है, जहां अच्छे प्रदर्शन की उम्मीद के बावजूद खुशनुमा नतीजा आने के आसार नहीं नज़र आ रहे. यह सीट है संभावित जीत वाली सीधी सीट, जहां से प्रदेश के वरिष्ठ कांग्रेसी नेता अर्जुन सिंह की बेटी वीणा सिंह ने पर्चा भरने के बाद नाम वापस लेने की तारीख़ गुज़र जाने के बाद भी मैदान में बने रह कर अपने इरादे साफ कर दिए हैं. अब कांग्रेस की लड़खड़ाती टीम में महज तीन अहम विकेट बचे हैं, जो इसे फालोऑन से भले ही बचा लें, हार से नहीं बचा सकते.

इनमें एक प्रमुख सीट है छिंदवाड़ा, जहां से पारंपरिक प्रत्याशी व मज़बूत केंद्रीय मंत्री कमलनाथ अपने ग्लब व पैड समेत तमाम गार्ड बांध कर तैयार खड़े हैं. ये फार्म में भी हैं और इस इलाक़े की पिच व उस पर बह रही हवा भी इनके अनुकूल चल रही है. सो उम्मीद की जानी चाहिए कि यहां से कांग्रेस को जीत हासिल होगी. इसी तरह दूसरी अहम सीट है गुना-शिवपुरी, जहां से सिंधिया घराने के कुलदीपक ज्योतिरादित्य कांग्रेस की नैया बचाने में अपना दम-ख़म लगा रहे हैं. यहां से भाजपा ने अपने तेज़तर्रार खिलाड़ी नरोत्तम मिश्रा को मैदान में उतारा है, जो अनुभवी भी हैं और राजनीति के कुशल पैंतरेबाज़ भी. लेकिन जब बात हार-जीत पर आकर रुकती हो, तो कहना ही होगा कि पलड़ा सिंधिया का भारी है. निश्चित तौर पर सिंधिया और कमलनाथ दोनों ही प्रत्याशियों के लिए उनका केंद्रीय मंत्री होना उनकी संभावित जीत का अहम कारण माना जाएगा. दोनों ने बतौर मंत्री अपने इलाक़ों को जो सौग़ातें दी हैं, उनका क़र्ज़ यहां के वोटर उन्हें जिता कर चुकाएं, तो कोई हैरानी नहीं होनी चाहिए.

अब रही बात रतलाम की, तो यहां मुक़ाबला दो भूरिया के बीच है और कांटे का है. कांग्रेस को उम्मीद है कि कांतिलाल भूरिया आदिवासियों को अपने पक्ष में करने के लिए भाजपा प्रत्याशी दिलीप सिंह भूरिया पर बीस पड़ेंगे. वैसे इस सीट पर अप्रत्याशित नतीजे के तौर पर अगर दिलीप जीत जाएं, तो कांग्रेस को भारी मायूसी का सामना कर पड़ सकता है.

प्रदेश की कुछ और ऐसी सीटें, जो कई बार कांग्रेस की झोली में गई हैं, इस बार मुश्किल हालात में पड़ती नज़र आ रही हैं. मसलन शहडोल सीट, जो आदिवासी बहुल इलाक़े में है और कांग्रेस ने यहां से पूर्व केंद्रीय मंत्री स्व दलबीर सिंह की पत्नी राजेश नंदिनी पर दांव लगाया है. राजेश नंदिनी को इस इलाक़े में जानते तो काफी लोग हैं, लेकिन वे वोट भी उन्हीं को देंगे, इसमें शक़ है. यहां उनके मुक़ाबले भाजपा के नरेंद्र सिंह मरावी हैं, जो अपेक्षाकृत युवा हैं और जनता के साथ बेहतर संवाद क़ायम कर पाते हैं. यहां कांग्रेस के ख़िलाफ़ जो बात जाती है, वह है कांग्रेस संगठन का बिखराव और यहां की आठ में से सात सीटों पर भाजपा का क़ायम होना. जाहिर है कि प्रदेश में भाजपा सरकार के होने का फ़ायदा भी नरेंद्र सिंह को ही मिलेगा. अगर यहां कोई बात भाजपा के ख़िलाफ़ जा सकती है, तो वह है एंटी इंकंबेंसी, यहां बीते 13 सालों से भाजपा सांसद होने के बावजूद दलपत सिंह परस्ते अपनी साफ-सुथरी छवि के अलावा क्षेत्र के विकास के लिए कुछ ख़ास हासिल नहीं कर पाए हैं. ऐसे में अगर लोग केंद्र में कांग्रेस सरकार की उम्मीद के साथ इस इलाक़े के विकास के लिए कांग्रेस प्रत्याशी को जीतता हुआ देखना चाहें, तो अलग बात है.

अगर प्रदेश में चुनावी मुद्दों की बात की जाए, तो कांग्रेस को भाजपा उन मुद्दों पर भी पटखनी देती दिखती है, जिन पर चुनावी वर्ष में कांग्रेस को अपना पूरा दमख़म लगा देना था. मसलन बिजली और पानी की कमी, कुपोषण से बच्चों की मौत, प्रदेश की लचर प्रशासनिक व्यवस्था के चलते तीन बड़े निवेशक सम्मेलनों के बावजूद प्रदेश में निवेश का न के बराबर होना आदि. लेकिन बिजली के मुद्दे पर कांग्रेस का दांव एकदम उलटा पड़ गया है. मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने दो महीने पहले से ही केंद्र पर पर्याप्त कोयला न देने का आरोप मढ़ कर कांग्रेस से एक बना-बनाया मुद्दा छीन लिया. उधर पानी की कमी प्रदेश की आधी से ज़्यादा आबादी को हलकान किए दे रही है, लेकिन कांग्रेस इस मुद्दे को भी चुनावी मुद्दा बना पाने में नाकाम रही है. ख़ासकर यह देखते हुए कि पिछले पांच सालों में पानी बचाने के नाम पर भाजपा सरकार ने कई हज़ार करोड़ रुपए प्रदेश में खर्च कर डाले हैं. इस वर्ष गर्मियों से पहले का जल संकट कांग्रेस के लिए संजीवनी का काम कर सकता था, लेकिन सुरेश पचौरी और नए प्रदेश प्रभारी बीके हरिप्रसाद को अभी पार्टी की एकजुटता बनाए रखने की क़वायद से ही फुर्सत नहीं मिल पा रही है. इसी तरह हाल के कुछ वर्षों में मध्यप्रदेश में भुखमरी व कुपोषण से हुई बच्चों की मौतें काफी चर्चित रहीं, लेकिन अब तक कांग्रेस की नज़र इन्हें चुनावी मुद्दा बनाने पर नहीं गई है. यह बेहद संवेदनशील मामला अगर कांग्रेस ने गंभीरता से उठाया होता, तो निश्चित तौर पर उसे भाजपा को कड़ी मुश्किल में डालने में सफलता मिल सकती थी. इसी तरह इंदौर, जबलपुर और खजुराहो में हुए तीन बड़े निवेशक सम्मेलनों में एक लाख करोड़ से भी ज़्यादा के निवेश की घोषणा के बावजूद अब तक निवेश के न हो पाने का मुद्दा चुनावी नहीं बन पाया है.

प्रदेश में चुनावी मुद्दों की बात की जाए, तो कांग्रेस को भाजपा उन मुद्दों पर भी पटखनी देती दिखती है, जिन पर चुनावी वर्ष में कांग्रेस को अपना पूरा दमख़म लगा देना था. मसलन बिजली और पानी की कमी, कुपोषण से बच्चों की मौत, प्रदेश की लचर प्रशासनिक व्यवस्था के चलते तीन बड़े निवेशक सम्मेलनों के बावजूद प्रदेश में निवेश का न के बराबर होना आदि. लेकिन बिजली के मुद्दे पर कांग्रेस का दांव एकदम उलटा पड़ गया है.

हाल की एक घटना, जो प्रदेश में क़ानून-व्यवस्था के मसले पर कांग्रेस के हाथों मुद्दा नहीं बन पाई, वह थी सतना के बिछियन गांव में डकैतों द्वारा 12 लोगों को ज़िंदा जलाया जाना. इस बड़ी घटना पर एक-दो बयानों के अलावा कांग्रेस ने और कुछ भी नहीं किया. जबकि हालत यह है कि रीवा व सतना में डकैतों ने लोकसभा चुनावों में भी अपनी सक्रियता दिखानी शुरू कर दी है. एक खुफिया रिपोर्ट के मुताबिक ये डकैत प्रति लोकसभा सीट अपने मनमाफिक वोट डलवाने के लिए राजनैतिक पार्टियों से 40-40 लाख रुपए वसूल रहे हैं. इन दो लोकसभा क्षेत्रों में फिलहाल क़रीब 17 गिरोह सक्रिय हैं जो बीते एक हफ्ते में एक दर्जन से भी ज्यादा जगहों पर ग्रामीणों की बैठकें कर अपने मनमाफिक वोट डालने का फरमान जारी कर चुके हैं. ऐसा न करने पर उन्होंने बिछियन जैसा नरसंहार दोहराने की धमकी भी दी है. अब तक बिछियन के हमलावरों को न पकड़ पाने में नाकाम मध्यप्रदेश की पुलिस इन ग्रामीणों को डाकुओं से न डरने का कितना भरोसा दिला पाएगी, यह अलग बात है.

तो, कुल मिला कर बात साफ है कि ट्वेंटीनाइन-29 का यह मैच, जहां कांग्रेस हारती नज़र आ रही है, वहीं इसे फिक्स मानने वालों की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ रही है. यह सोचने वाली बात है कि कांग्रेस कई सीटों पर ऐसे प्रत्याशी खड़ा कर चुकी है, जिससे न केवल प्रदेश के कांग्रसी नेताओं बल्कि विरोधियों को भी हैरत हुई है. भोपाल और होशंगाबाद ऐसी ही सीटें हैं. भोपाल से भाजपा के वरिष्ठ नेता कैलाश जोशी के मुक़ाबले पहले अनिल शास्त्री का नाम लगभग तय था, लेकिन अंतिम मौक़े पर सुरेंद्र सिंह ठाकुर को मैदान में उतार दिया गया. इसी तरह होशंगाबाद से भाजपा सांसद रामपाल सिंह के मुक़ाबले पहले तो सुरेश पचौरी लगभग तैयार दिखे, फिर अचानक उनके समर्थक उदयप्रताप सिंह को हरी झंडी मिली. कांग्रेस के ऐसे अप्रत्याशित फ़ैसलों से कहीं न कहीं यह संदेश जनता में जा रहा है कि पार्टी को मध्यप्रदेश से ज़्यादा उम्मीद नहीं है. लेकिन लड़ने के बजाय हार मान लेने का रवैया अधिकांश लोगों के पल्ले नहीं पड़ रहा है. वैसे भी अभी तक यहां कांग्रेस के समर्थन में किसी स्टार नेता की कोई बड़ी बैठक नहीं हुई है. राहुल, प्रियंका, सोनिया व मनमोहन देश के अन्य हिस्सों में ज़्यादा ध्यान दे रहे हैं. कमलनाथ, ज्योतिरादित्य व अर्जुन सिंह सरीखे प्रदेश के बड़े नेताओं में अपनी पारंपरिक सीटों की बचाने की जद्दोज़हद ही इतनी भारी पड़ रही है कि वे दूसरे क्षेत्रों में जाकर प्रचार का ज़ोखिम उठाने को तैयार नहीं दिख रहे. तो यह साफ है कि कांग्रेस का विदिशा में जैसा आग़ाज़ हुआ है, अंजाम भी उससे बहुत अलग नहीं होने वाला है. अगर यह अंजाम उज्जैन में पूर्व केंद्रीय मंत्री सत्यनारायण जटिया की अप्रत्याशित हार और कांग्रेस प्रत्याशी प्रेमगुड्डू की जीत के रूप में सामने आए, तो सोनिया गांधी या सुरेश पचौरी को भले ही हैरानी हो, पर इस क्षेत्र में 25 वर्षों से उपेक्षा झेल रहे आम लोगों के लिए यह राहत की ही बात होगी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

तीन राज्यों में सिमटा है चौथा मोर्चा

अजय कुमार

हिंदुस्तान के दो बड़े राजनीतिक दल भाजपा और कांग्रेस अपने-अपने गठबंधन के बल पर केंद्र में सरकार बनाने का सपना देख रहे हैं, तो ऐसे राजनीतिक दलों की भी कमी नहीं है, जिनके नेता सरकार बनाने के लिए नहीं बल्कि प्रधानमंत्री पद पर नज़रें लगाए हैं. वैसे तो देश भर में प्रधानमंत्री बनने की दौड़ में कई नेता शामिल हैं, लेकिन उत्तर भारत (बिहार-उत्तर प्रदेश) से प्रधानमंत्री पद की दौड़ में तीन नाम तेज़ी से उभर कर सामने आ रहे हैं. इन नेताओं में उत्तर प्रदेश से बसपा सुप्रीमो मायावती और सपा प्रमुख मुलायम सिंह यादव के अलावा बिहार से लालू यादव का नाम प्रधानमंत्री की कुर्सी के लिए सबसे ऊपर है. माया प्रधानमंत्री की कुर्सी एकला चलो के सिद्धांत पर चल कर हासिल करने का सपना देख रही है, वहीं मुलायम और लालू ने अपनी तमन्नाओं को पंख लगाने के लिए पासवान को भी साथ ले लिया है. फिरकापरस्त ताक़तों को ठिकाने लगाने के नाम पर एकजुट हुई यह तिकड़ी पर्दे के पीछे से दोतरफा खेल खेल रही है. जाहिर तौर पर तो यह तिकड़ी पिछड़ों और दलितों में एकता की बात कर रही है, वहीं प्रधामनंत्री बनने के लिए नैतिकता को ताक पर रख कर नए सपने बुनने की क़वायद भी कर रही है.

येन-केन-प्रकारेण लालू-मुलायम-पासवान का चौथा मोर्चा सत्ता की चाबी तो अपने पास रखना चाहता है, इसके साथ-साथ वह चुनाव बाद कांग्रेस के अलावा अन्य विकल्प भी खुले रखने की जुगत भिड़ा रहा है. तीन राज्यों में सिमटे चौथे मोर्चा के नेताओं का एक साथ आना इत्तेफाक नहीं है. दरअसल, इसके पीछे भी तीनों की राजनीतिक मजबूरी है. तीनों ही नेताओं को अपने वजूद पर ख़तरा मंडराता दिख रहा है. लालू और पासवान, जिनका जनाधार बिहार और झारखंड (छोटा-सा राज्य) तक ही सिमटा है, वह बिहार की नीतीश सरकार को जनता से मिल रहे समर्थन से परेशान हैं. नीतीश ने बिहार की बागडोर संभालते ही वहां के हालात बदल दिए हैं. बिहार में विकास का पहिया दौड़ा, तो लालू और पासवान को अपनी ज़मीन खिसकती दिखाई देने लगी. धर्म और जाति में जनता को बांट कर वर्षों बिहार पर राज करने वाले लालू को शायद यहां की जनता और बर्दाश्त करने के मूड में नहीं है. इस बात का अहसास लालू को हुआ, तो वह पासवान से अपनी पुरानी दुश्मनी भूल कर हाथ मिलाने को मजबूर हो गए. पासवान का भी हाल लालू जैसा ही था, इसलिए वह भी लालू के झूले में झूलने को तैयार हो गए.

रामविलास पासवान, लालू प्रसाद, मुलायम सिंह यादव, रामगोपाल यादव, अशोक सिंह और शिवपाल सिंह यादव

लालू और पासवान साथ आए, तो इन्हें मुलायम की याद आई. उत्तरप्रदेश की राजनीति में अपना अहम स्थान रखने वाले मुलायम की दशा भी कुछ-कुछ लालू-पासवान जैसी ही है. लालू और पासवान की परेशानी का कारण नीतीश कुमार हैं, तो मुलायम की परेशानी की वजह है मुख्यमंत्री मायावती और कल्याण से दोस्ती के बाद मुसलमानों का इनके प्रति पैदा हुआ अविश्वास था. तीनों का दर्द एक सा था, तो दोस्ती होने में देर नहीं लगी. सब अपने-अपने फ़ायदे तलाश रहे हैं. लालू को साथ लेकर मुलायम मुसलमानों में अपना खोया विश्वास फिर से जगाना चाहते हैं. लालू की मुसलमानों में अच्छी पकड़ है. नब्बे के दशक में भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी के रथ को बिहार से गुजरते समय रोक कर लालू ने मुसलमानों का दिल जीता था. यह बात अभी तक मुसलमान भूले नहीं हैं. इसी बात का फ़ायदा उठाने के लिए मुलायम सिंह, लालू यादव को बिहार से उत्तर प्रदेश ले आए. वहीं बसपा के दलित वोट बैंक में सेंध लगाने के लिए पासवान को काट के तौर पर आगे कर दिया गया. दो पिछड़ों (लालू-मुलायम) और एक दलित की एकता से यूपीए पर जो प्रश्न चिन्ह लगाया गया है, इसका मक़सद कोई भी समझ सकता है. ऐसी एकता का सकारात्मक संदेश जनता तक पहुंचेगा और वोट में बदल पाएगा, इसका भरोसा जनता के साथ-साथ शायद इस तिकड़ी को भी नहीं है. यही वजह है इस तिकड़ी के चेहरे को लोगों ने पढ़ना और समझना शुरू किया तो इसने अपने चेहरे पर मुखौटा लगा लिया. ताकि जनता को भ्रमित किया जा सके. इधर जनता तीनों की दोस्ती के मायने तलाशे जा रही है. सवाल यह भी उठ रहा है कि यह दोस्ती कितनी लंबी चलेगी. सबसे हास्यास्पद बात यह है कि इस तिकड़ी ने चौथा मोर्चा तो बना लिया है, लेकिन दिल में यूपीए ही बसा है. इसीलिए तिकड़ी के नेता चौथे मोर्चे का गठन करने के बाद भी अपने आप को यूपीए का भी सदस्य बताते रहते हैं. बस इन्हें यूपीए में कांग्रेसी नेता प्रधानमंत्री के रूप में मंजूर नहीं है. चौथे मोर्चे की हक़ीक़त तुरंत सामने आ जाए, अगर कांग्रेस तीनों में से किसी एक से भी झूठ कह दे कि चुनाव बाद हम आपको प्रधानमंत्री के रूप में स्वीकार कर सकते हैं. यह मोर्चा चंद मिनट में टूट जाएगा. तीनों ही नेता प्रधानमंत्री बनने का सपना कमोबेश थोड़ा कम-ज़्यादा पाले हुए हैं, जिसे पूरा करना ही इनका पहला और आख़िरी उद्देश्य है.

मौक़ापरस्त राजनीति के इस दौर में तीनों की एकता से हारी हुई बाज़ी पलट पाएगी, यह कहना अभी जल्दबाज़ी होगी, लेकिन इतना तो तय है ही कि इनके पास और कोई विकल्प भी नहीं बचा था. मोर्चे का गठन हो चुका है. इसे ज़िंदा रखने की ज़रूरत आ पड़ी तो यह मोर्चा अपना वजूद बचाए रखने के लिए चुनाव को मज़हबी रंग देने का भरपूर प्रयास करने लगा. भड़काऊ भाषा का इस्तेमाल भाषणों में किया भी जा रहा है. इसमें तनिक भी शक़ नहीं है कि लालू आगे भी वरुण के सीने पर बुलडोज़र चलाने की, सपा प्रमुख मुलायम सिंह मुसलमानों का कोई नुक़सान न करने की और रामविलास पासवान किसी मुसलमान को देश का प्रधानमंत्री बनाने जैसी भड़काऊ भाषा आगे भी नहीं बोलते रहेंगे. देश के विकास से चौथे मोर्चा का कोई लेनादेना नहीं है. इस मोर्चे की जितनी भी जनसभाएं हो रही हैं, सभी में एक वर्ग विशेष की शान में क़सीदे पढ़े जा रहे हैं, वहीं दूसरे वर्ग को खरी-खोटी सुनाई जा रही है. किसी भी जनसभा में विकास से जुड़े मुद्दों पर चर्चा तक नहीं होती है. यह धड़ा किसी भी तरह 50-60 सीटें जीत कर सौदेबाज़ी करने का सपना संजोए है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

लालू और पासवान की परेशानी नीतीश कुमार हैं, तो मुलायम की परेशानी की वजह है मुख्यमंत्री मायावती और कल्याण से दोस्ती के बाद मुसलमानों का इनके प्रति पैदा हुआ अविश्वास

पूर्वांचल में अपनों से ही परेशान है भाजपा

दिनेश विश्वकर्मा

पंद्रहवीं लोकसभा के चुनावी समर में पूर्वांचल की कई सीटों पर 16 अप्रैल को चुनाव होने हैं. इस समर में भाजपा अपने ही असंतुष्ट नेताओं से जूझती नज़र आ रही है. ख़ासकर वाराणसी, संत कबीरनगर, मिर्ज़ापुर, कुशीनगर और बांसगांव समेत दर्जनों संसदीय क्षेत्र शामिल हैं. ऐसे में भाजपा के कई दिग्गजों की प्रतिष्ठा दांव पर तो लगी ही हुई है, साथ ही पार्टी की लुटिया भी डूबती नज़र आ रही है.

भाजपा के दिग्गज नेताओं में शुमार डॉ मुरली मनोहर जोशी, जो पूर्व राजग सरकार में केंद्रीय मंत्री रह चुके हैं, इस बार उन्हें चुनाव में इनको अपनी ही पार्टी के पूर्व विधायक अजय राय से टक्कर लेनी पड़ रही है. विधायक अजय राय वाराणसी संसदीय सीट से चुनाव लड़ने के लिए प्रयास कर रहे थे, लेकिन भाजपा आलाकमान ने डॉ. मुरली मनोहर जोशी को यहां से उम्मीदवार घोषित कर दिया. ऐसे में अजय राय को समाजवादी पार्टी का दामन थामना पड़ा. इसका असर प्रचार के दौरान स्पष्ट दिख रहा है. यहां ब्लॉक स्तर से लेकर ज़िला स्तर तक के तमाम पदाधिकारी और कार्यकर्ता सपा में शामिल हो गए.

प्रदेश अध्यक्ष डॉ रमापति राम त्रिपाठी के पुत्र शरद त्रिपाठी को भाजपा ने संत कबीरनगर संसदीय सीट से उम्मीदवार बनाया है. जहां पूर्व सांसद अष्टभुजा शुक्ल, इंद्रदेव मिश्र सहित पार्टी के कई बड़े नेता टिकट पाने के प्रयास कर रहे थे. ऐसे लोग इस चुनाव में पार्टी की नीतियों से बिदके हुए हैं. हालांकि शरद त्रिपाठी के टिकट के लिए गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी एवं गोरखपुर के सांसद योगी आदित्यनाथ का विशेष दबाव बताया जाता है. पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष डॉ रमापति राम त्रिपाठी एवं योगी आदित्यनाथ के बीच तनातनी पहले से ही बरक़रार थी, लेकिन लोकसभा चुनाव के दौरान इन दोनों लोगों का एक धुरी में फिट बैठना लोगों को आश्चर्यचकित कर गया है. पिछले विधानसभा के चुनाव के दौरान भाजपा प्रत्याशियों के चयन को लेकर योगी आदित्यनाथ ने डॉ रमापति राम त्रिपाठी पर कई गंभीर आरोप लगाए थे. शरद के टिकट को लेकर असंतुष्ट नेता और कार्यकर्ता अपनी भड़ास निकालने से चूकने वाले नहीं दिखते. इसके चलते भाजपा को इस संसदीय सीट पर चुनाव के दौरान सांसत झेलनी पड़ रही है.

मिर्जापुर में पार्टी के वरिष्ठ नेता एवं पूर्व मंत्री ओमप्रकाश सिंह के पुत्र अनुराग सिंह के टिकट ने भी भाजपा कार्यकर्ताओं और नेताओं को दो ख़ेमों में बांट कर रख दिया है. श्रावस्ती में भाजपा प्रत्याशी सत्यदेव सिंह के टिकट घोषित होने के बाद से ही असंतुष्टों को मनाने का सिलसिला चलता रहा, लेकिन इनके विचारों में बदलाव कम ही दिख रहा है. खासकर बिंदूलाल एवं भगतराम मिश्र इस सीट पर टिकट बंटवारे को लेकर नाराज़ चल रहे हैं. कैसरगंज में एलपी मिश्र को भी असंतुष्टों के विरोध का सामना करना पड़ रहा है. इनके टिकट को लेकर नाराज़ पूर्व एमएलसी सुभाष त्रिपाठी ने भले ही नेतृत्व के आग्रह पर अपना मौन तोड़ दिया है, लेकिन वहां के कार्यकर्ता अपना मौन तोड़ने को तैयार नहीं हैं. हाल ही में पार्टी में आए वाईडी सिंह को बस्ती से उम्मीदवार बनाया गया है. इनके बारे में कहा जाता है कि इन्हें योगी आदित्यनाथ के दबाव पर टिकट दिया गया है. वैसे इस सीट के लिए विजयसेन सिंह एवं हरीश दुबे दावेदार थे, जिन्हें दरकिनार कर दिया गया. दोनों ही नेता संघ पृष्ठभूमि के हैं. विजयसेन तो बस्ती ही नहीं आसपास के इलाक़ों में भी काफी चर्चित नेता माने जाते हैं.

बांसगांव संसदीय सीट पर भाजपा से टिकट पाए कमलेश पासवान को भी पार्टी नेताओं के विरोध का सामना करना पड़ रहा है. पासवान को लेकर भाजपा में नेताओं से लेकर कार्यकर्ताओं में भी नाराज़गी साफ देखी जा रही है क्योंकि पासवान ने इस सीट पर टिकट पाने के लिए समाजवादी पार्टी को छोड़कर भाजपा का दामन थामा है. ऐसे में कई दिग्गज नेता पार्टी की नीतियों को लेकर खासे नाराज़ चल रहे हैं. कुशीनगर में विजय दुबे को टिकट मिलने से दुर्गा प्रसाद मिश्र, सूर्यप्रताप शाही जैसे बड़े नेताओं को भी मन मसोसकर रहना पड़ रहा है. इन दोनों सीटों पर भी योगी आदित्यनाथ की ही पसंद के उम्मीदवार तय किए गए हैं.

भदोही संसदीय सीट के लिए टिकट के बंटवारे को लेकर आक्रोशित गोरखनाथ पांडेय ने तो भाजपा को ही तिलांजलि दे डाली. उन्होंने चुनाव लड़ने के लिए बसपा को गले लगा लिया है. इसके अतिरिक्त पार्टी में कई सीटों पर भी उम्मीदवारों के चयन एवं वरीयता को लेकर वरिष्ठ एवं सक्रिय नेता खासे नाराज़ चल रहे हैं. जिन्हें मनाने एवं सीट निकालने के लिए पार्टी उम्मीदवारों को परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है.

मुरली मनोहर जोशी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

फोटो-*दीपक गुप्ता*

रमापति राम त्रिपाठी

भाजपा के दिग्गज नेताओं में शुमार डॉ मुरली मनोहर जोशी, जो पूर्व राजग सरकार में केंद्रीय मंत्री रह चुके हैं, इस बार उन्हें चुनाव में इनको अपनी ही पार्टी के पूर्व विधायक अजय राय से टक्कर लेनी पड़ रही है. विधायक अजय राय वाराणसी संसदीय सीट से चुनाव लड़ने के लिए प्रयास कर रहे थे, लेकिन भाजपा आलाकमान ने डॉ. मुरली मनोहर जोशी को यहां से उम्मीदवार घोषित कर दिया. ऐसे में अजय राय को समाजवादी पार्टी का दामन थामना पड़ा. इसका असर प्रचार के दौरान स्पष्ट दिख रहा है. यहां ब्लॉक स्तर से लेकर ज़िला स्तर तक के तमाम पदाधिकारी और कार्यकर्ता सपा में शामिल हो गए.

भाजपा की उमा भारती

लालजी टंडन के साथ उमा भारती

भारतीय जनता पार्टी के लिए चुनावी जंग में सब कुछ अच्छा ही अच्छा हो रहा है. वरुण मुद्दे ने भाजपा को जहां पंख लगा दिए, वहीं उमा भारती ने आकर कल्याण की कमी पूरी कर दी. भाजपा को उमा भारती के रूप में उत्तर प्रदेश में ऐसी संजीवनी मिली है, जिसका सही इस्तेमाल भाजपा की सेहत को फ़ायदा पहुंचा सकता है. कल्याण के जाने से आहत भाजपा का दामन उमा भारती ने खुशियों से भर दिया है. यही वजह है कि वरुण के कारण बने माहौल को गर्म रखने के लिए भाजपा आलाकमान ने उमा का अधिक से अधिक प्रयोग उत्तर प्रदेश में करने का मन बनाने में देरी नहीं की. नौ अप्रैल से उन्होंने अपना प्रचार अभियान शुरू भी कर दिया. सबसे पहले वह प्रदेश भाजपा कार्यालय पहुंची. यहां क़रीब एक घंटे तक रुकने के बाद उमा ने महापौर दिनेश शर्मा सहित कई अन्य नेताओं से मुलाक़ात की. इसके बाद वह लखनऊ से चुनाव लड़ रहे बुजुर्ग भाजपा नेता लालजी टंडन से आशीर्वाद लेने उनके पास पहुंची. अयोध्या में भगवान रामलला के दर्शन करने के बाद उमा का चुनावी कारवां आगे बढ़ता जा रहा है.

सत्ता की सीढ़ी चढ़ने को बेताब भाजपा ने रूठी हुई साध्वी को माफ़ करके गले लगा लिया है. देर सबेर उनकी पार्टी में वापसी भी हो जाएगी. भाजपा की तरफ से सकारात्मक संदेश के बाद गेंद अब उमा के पाले में है. उन्हें साबित करना होगा कि वह भाजपा के लिए कितनी उपयोगी साबित हो सकती हैं. उमा भी शायद कोई मौक़ा छोड़ना नहीं चाहेंगी. आडवाणी को प्रधानमंत्री बनाने की क़सम खाकर प्रचार अभियान में जुटी उमा भारती यह साबित करने में लग गई हैं कि अभी भी उनमें वह आग बाक़ी है, जो आज से क़रीब दो साल पहले 27 अप्रैल 2007 को भाजपा छोड़ते समय थी. अपने स्वभाव के अनुसार फायर ब्रांड उमा ने प्रचार के लिए मैदान में उतरते ही गोला दागना शुरू भी कर दिया है. वह जनता के बीच जाकर उन्हें समझा रही हैं कि राम, रोटी, हिंदुत्व और भारतीय संस्कृति की रक्षा की बात करने वाला व्यक्ति ही देश का अगला प्रधानमंत्री बनेगा. ऐसा व्यक्ति आडवाणी के अलावा और कोई नहीं हो सकता है. भाजपा उमा के आगमन से फूली नहीं समा रही है. उसे इस बात की खुशी है कि सही समय पर इस संन्यासिन नेता को 'राष्ट्रधर्म' याद आ गया. यह राष्ट्रधर्म प्रधानमंत्री पद के लिए लालकृष्ण आडवाणी की उम्मीदवारी के समर्थन का है. उमा भारती आज भले ही भाजपा के साथ आ गई हों और भाजपाई उनके आने से गदगद भी हों, लेकिन उनके अतीत को नहीं भुलाया जा सकता है. यह वही उमा भारती हैं, जिनका कुछ समय पहले तक एकमात्र लक्ष्य था, किसी भी तरह से लालकृष्ण आडवाणी को प्रधानमंत्री बनने से रोका जाए. संन्यासी में अहंकार की भावना नहीं होनी चाहिए, लेकिन उमा में अहंकार की भावना मानो कूट-कूट कर भरी हो. मध्यप्रदेश के पिछले विधानसभा चुनावों में भाजपा को जो ऐतिहासिक बहुमत मिला था, उसे उमा ने मात्र अपने बल पर मिला हुआ मान लिया था. यही उनकी ग़लती साबित हुई. उन्होंने जिन परिस्थितियों में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री का पद छोड़ा और जिन परिस्थितियों में शिवराज सिंह चौहान की इस पद पर ताजपोशी हुई, उससे एक बार तो लगा कि भाजपा का मध्यप्रदेश में नुक़सान निश्चित है. लेकिन शिवराज सिंह चौहान ने परिस्थितियों को ऐसा संभाला कि राज्य में दोबारा भाजपा की सरकार बनी. उमा भारती के सपनों की भारतीय जनशक्ति पार्टी को मध्यप्रदेश की जनता ने पूरी तरह से नकार दिया. उमा हिंदुत्व का राग अलापती रहीं और चौहान ने विकास को मुद्दा बना कर बाज़ी मार ली. हालांकि इसके पीछे कारण कांग्रेस में एकजुटता की कमी को भी बताया गया.

सत्ता की सीढ़ी चढ़ने को बेताब भाजपा ने रूठी हुई साध्वी को माफ़ करके गले लगा लिया है. देर-सबेर उनकी पार्टी में वापसी भी हो जाएगी. भाजपा की तरफ से सकारात्मक संदेश के बाद गेंद अब उमा के पाले में है. उन्हें साबित करना होगा कि वह भाजपा के लिए कितनी उपयोगी साबित हो सकती हैं.

राज्य विधानसभा चुनावों के दौरान उमा भारती के विधानसभा पहुंचने के लक्ष्य को जब जनता ने पूरा नहीं होने दिया और राज्य में सरकार बनाने के ख्वाब को मात्र चार सीटें देकर बुरी तरह तोड़ दिया, तो उमा धरातल पर आईं. उनके संगी-साथी बिदकने लगे. उमा के मूड पर आधारित राजनीति के चलते ही उनसे सबसे पहले मदन लाल खुराना दूर हुए और उसके बाद उनके दाएं हाथ समझे जाने वाले प्रहलाद पटेल. पटेल ने तो अलग होकर अपने को पार्टी का अध्यक्ष घोषित कर दिया, जिसके बाद पार्टी पर 'मालिकाना हक' का विवाद चुनाव आयोग की चौखट पर पहुंच गया. गुजरात और उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों के दौरान उमा ने जिस प्रकार अपने प्रत्याशी भाजपा प्रत्याशियों के विरुद्ध हटाए, उससे भी उनकी पार्टी के कार्यकर्ताओं का मनोबल टूटा और उन्हें यह लग गया कि इस पार्टी में भविष्य नहीं है.

उमा की दशा भांप कर ही उनकी पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष भाजपा में गए, तो उन्हें राज्यसभा की सदस्यता मिली और उसके बाद प्रहलाद पटेल भी धीरे से भाजपा में लौट आए. भाजपा छोड़े उमा को दो साल भी पूरे नहीं हुए थे और उन्हें लगने लगा था कि अब उनके लिए भविष्य की राह आसान नहीं है. मौके की नज़ाक़त भांप कर ही उमा ने राजनाथ सिंह को पत्र लिखकर लालकृष्ण आडवाणी की प्रधानमंत्री पद की उम्मीदवारी का समर्थन करते हुए आडवाणी को पिता समान और राजनाथ सिंह को भाई समान बताया. उन्होंने कहा है कि वह भाजपा की जीत सुनिश्चित करने के लिए देश भर में प्रचार करेंगी और उनकी पार्टी का कोई भी उम्मीदवार चुनाव में नहीं उतरेगा. उमा के भाजपा में आते ही गोविंदाचार्य के भी भाजपा में वापसी की अटकलें लगने लगी हैं. कुछ दिनों पहले ही उमा ने भारतीय जनशक्ति पार्टी की कमान चिंतक गोविंदाचार्य को सौंपी थी. अब जबकि उमा भारती भाजपा में लौटने की राह पर हैं, तो निश्चित ही गोविंदाचार्य की भी देर-सबेर वापसी की संभावना हो सकती है. जहां तक बात भाजपा की है, उमा की घर-वापसी पर भाजपा ने ज़्यादा उत्साह इसलिए नहीं दिखाया है, क्योंकि वह उमा को ज़्यादा भाव नहीं देना चाहती. पार्टी को चिंता है कि उमा आज जो कह रही हैं, पता नहीं कल उस पर क़ायम रहेंगी या नहीं. बहरहाल, पार्टी को उमा के आने का लाभ उत्तरप्रदेश में कुछ हद तक हो सकता है, जहां से उसके वरिष्ठ नेता कल्याण सिंह हाल ही में पार्टी छोड़ गए हैं. लोध समुदाय के कल्याण सिंह के जाने से भाजपा उमा को उत्तरप्रदेश में प्रचार में उतार सकती हैं, क्योंकि उमा भी लोध वर्ग से ही हैं. अब देखना यह है कि कुछ समय तक चुनाव प्रचार में भाजपा को कोसने वाली उमा अब चुनाव प्रचार में भाजपा की शान में किस तरह क़सीदे पढ़ती हैं.

भाजपा के लिए उमा भले ही उम्मीद की किरण लेकर आई हैं, लेकिन उमा के कारण भाजपा को भविष्य में मुश्किल भी आ सकती है. मूल रूप से मध्यप्रदेश में अपनी पकड़ रखने वाली उमा भारती देर-सबेर मध्यप्रदेश में भी लौटना चाहेंगी. मध्यप्रदेश में शिवराज सिंह चौहान का राज है. वह वहां विकास की गंगा बहा कर चुनाव जीते हैं. उन्होंने आलाकमान से पहले ही कह दिया था कि उन्हें उमा की ज़रूरत नहीं है. वहीं बिहार (जहां जदयू और भाजपा गठबंधन की सरकार है) में भी उमा को न भेजने की बात कही जा रही है. बिहार के मुख्यमंत्री और जदयू नेता नीतीश कुमार ने साफ कह दिया है कि उन्हें वरुण और उमा जैसे कट्टर हिंदुत्ववादी नेताओं की ज़रूरत नहीं है. देश के अन्य राज्यों में अवश्य उमा प्रचार के लिए जा सकती हैं, लेकिन वहां वह कितनी कारगर होंगी, कोई नहीं जानता.

अजय कुमार

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बनते-बिगड़ते रिश्ते

चुनाव में ऊंट को अपनी करवट बैठाने के लिए राजनीति से जुड़े लोग न जाने कितनी कसरतें करते रहते है. रिश्ते भी चुनावी लाभ को लेकर बनते-बिगड़ते रहते हैं. कल तक के दुश्मनों को दोस्त बनते देखा जाता है. कल तक जिसकी जान के दुश्मन होते थे, मौका पड़ा तो उसकी गलबहियां डालने में भी गुरेज नहीं करते. नेपाल सीमा से सटे तथा सांप्रदायिक और सामरिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण और संवेदनशील गोरखपुर मंडल में भी चालू चुनावी दौर में इसे बड़ी शिद्दत से महसूसा जा रहा है. 1994 में सपा के प्रदेश सचिव एवं बाहुबली विधायक ओमप्रकाश पासवान की बांसगांव संसदीय क्षेत्र में एक चुनावी सभा के दौरान की गई हत्या के बाद पासवान परिवार के लोगों ने गोरक्षनाथ मंदिर से इसका रिश्ता जोड़ते हुए योगी आदित्यनाथ का नाम हत्याकांड से जोड़ा था, जिसके चलते दोनों पक्षों में खूनी दुश्मनी का माहौल था. पर इस चुनाव में अपनी वैतरणी पार कराने के लिए स्व पासवान के पुत्र और सपा के पूर्व विधायक कमलेश पासवान ने न केवल भाजपा का साथ लिया बल्कि योगी शरणागत होने में भी कोई परहेज़ नहीं किया. आज वे गर्व से स्वयं को योगी का प्रत्याशी बताते हैं. ऐसा ही एक और समीकरण योगी से ही जुड़ा है. कुछ समय पहले तक योगी से 36 के आंकड़े पर रहे भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष डॉ रमापति राम त्रिपाठी ने इस चुनाव में प्रत्याशी चयन में योगी की बढ़ी भूमिका और क्षेत्र में उनके वोट बैंक को देखते हुए न केवल योगी का दामन थामा बल्कि अपने पुत्र शरद त्रिपाठी को संत कबीर नगर संसदीय क्षेत्र से योगी खेमे से प्रोजेक्ट कर राहत की सांस ली.

आज से लगभग 25-30 वर्ष पहले गोरखपुर में माफियाओं की जंग के दौरान वीर बहादुर सिंह और पं हरिशंकर तिवारी की अदावत को यहां का बच्चा-बच्चा जानता है. श्री सिंह की मृत्यु के पश्यात उनके पुत्र फतेह बहादुर सिंह ने गोरक्षनाथ मंदिर का दामन थामा. वे चाहे किसी भी पार्टी से चुनाव लड़ें, मंदिर का आशीर्वाद हमेशा उनके साथ रहा. पर इस बार फतेह बहादुर, जो वर्तमान में प्रदेश की बसपा सरकार के मंत्री हैं, दल में अपनी निष्ठा जताने के लिए मंच से पं हरिशंकर तिवारी के पुत्र और योगी के छि लाफ़ बसपा के प्रत्याशी विनय शंकर तिवारी का प्रचार करते देखे जा रहे हैं. तमाम लोगों की दलीय निष्ठाएं इस चुनाव ने बदल दी हैं. सपा की सरकार बनने पर बसपा छोड़ देने वाले राम भुवाल निषाद ने एक बार फिर निष्ठा बदलते हुए बहिन जी का दामन पकड़ लिया है.

पूर्वांचल में योगी फैक्टर के सहारे है भाजपा

देश की 15वीं लोकसभा के लिए आगामी 16 अप्रैल को मतदान के पहले दौर में गोरखपुर मंडल से 5 सांसद चुन कर लोकसभा में जाएंगे. प्रदेश में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही भाजपा के लिए जहां पूरे पूर्वांचल में फायरब्रांड नेता योगी आदित्यनाथ प्रमुख खेवनहार के रूप में नज़र आ रहे हैं, वहीं इस मंडल से सपा-बसपा अपनी घुसपैठ तेज़ करने और कांग्रेस अपनी ज़मीन तलाशती नज़र आ रही है. तीन बार लोकसभा चुनाव जीत चुके गोरक्षनाथ मंदिर के उत्तराधिकारी तथा पूर्वांचल की भगवा ब्रिगेड के अगुआ योगी आदित्यनाथ अपनी बेबाक भाषा के चलते क्षेत्र में जिस प्रकार लोकप्रियता की सीढ़ियां चढ़ रहे हैं, उससे प्रदेश भाजपा के शीर्ष में बढ़ी घबराहट इस बार समर्पण की स्थिति में आ चुकी है. कभी सभासद की चंद सीटों के लिए भाजपा छोड़ने की धमकी देने को विवश योगी के झंडे तले आज भाजपा किस कदर आ चुकी है कि इस बार प्रदेश भाजपा अध्यक्ष डॉ रमापति राम त्रिपाठी को भी अपने पुत्र शरद त्रिपाठी के लिए संत कबीर नगर से टिकट के लिए योगी की सिफारिश की ज़रूरत पड़ी. पूर्वांचल की कम से कम एक दर्जन सीटों पर इस बार योगी के अपने चुनाव लड़ रहे हैं. जहां एक प्रचारक के रूप में योगी की ही अधिक डिमांड नज़र आ रही है. दिनभर हेलीकॉप्टर से गोरखपुर, बस्ती और आजमगढ़ मंडल की सीटों पर प्रचार के बाद योगी रात में अपने क्षेत्र की सुध लेते हैं.

जैसे इस बार बसपा और सपा दोनों ने ब्राह्मण कार्ड खेल गोरखपुर में भाजपा को चुनौती देने का प्रयास किया है, पर दोनों प्रत्याशी नए होने के कारण अभी योगी को वह टक्कर नहीं दे पा रहे हैं, जितनी पार्टियों को उनसे उम्मीदें थीं. पूर्वांचल की ब्राह्मण राजनीति में खासा दखल रखने वाले और योगी के धुरविरोधी, पूर्व कैबिनेट मंत्री रहे पं हरिशंकर तिवारी के पुत्र विनय शंकर तिवारी के रूप में बसपा ने गोरखपुर की राजनीति को गरमाने का भरपूर प्रयास किया है और जीत-हार के परे बसपा को इसका लाभ ज़रूर मिलेगा. वहीं सपा ने योगी को चुनौती से अधिक बसपा की सोशल इंजीनियरिंग की काट के रूप में भोजपुरी फिल्मों के नायक और एक गायक के रूप में पूर्वांचल में मज़बूत पकड़ रखने वाले मनोज तिवारी को मैदान में उतार कर जहां क्षेत्र के ब्राह्मण मतों में छेद करने का प्रयास किया है, वहीं जीत का एक जुआ भी खेला है. यहां से कांग्रेस प्रत्याशी लड़ाई में कहीं नज़र नहीं आ रहे हैं. सपा बसपा के इस द्वंद्व में फंसा मुसलमान मतदाता एक बार फिर खुद को ठगा सा महसूस कर रहा है. गोरखपुर की दूसरी लोकसभा सीट बांसगांव सीट पर दिग्गज कांग्रेसी नेता तथा केंद्रीय राज्यमंत्री महावीर प्रसाद को इस बार सपा से भाजपा में आए पूर्व विधायक कमलेश पासवान अपनी युवा एवं सहज छवि के साथ कड़ी टक्कर दे रहे हैं. उन्हें 1994 में इसी क्षेत्र से सपा के उम्मीदवार उनके पिता ओमप्रकाश पासवान की हुई हत्या की सहानुभूति भी मिल रही है, वहीं उन्हें योगी आदित्यनाथ द्वारा मिले आशीर्वाद से भी काफी उम्मीद नज़र आ रही है. इस क्षेत्र में इस बार देवरिया जनपद की रुद्रपुर क्षेत्र के मिल जाने से उत्साहित बसपा ने देवरिया के मूल निवासी तथा बसपा के कद्दवार नेता श्रीनाथ एडवोकेट को मैदान में उतारा है. इन तीनों के बीच यहां की लड़ाई के सिमटने के प्रबल आसार है. वैसे विपक्षियों द्वारा विकास को मुद्दा बनाए जाने से महावीर प्रसाद को काफी दिक़्क़तें आ रही हैं और वे मतदाताओं का मूड भांप कर उससे एक बार अंतिम मौक़े की मांग कर रहे है.

गोरखपुर तथा नेपाल से सटे जनपद महराजगंज में भी इस बार विकास के मुद्दे पर निवर्तमान सांसद भाजपा के पंकज चौधरी को काफी दिक़्क़तें आ रही हैं. बसपा ने यहां से भी ब्राह्मण कार्ड खेल कर पूर्वांचल के वरिष्ठ नेता पं हरिशंकर तिवारी के प्रमुख रणनीतिकार गणेश शंकर पांडेय को मैदान में उतार कर यहां अपनी दमदार दावेदारी प्रस्तुत कर दी है. जबकि सपा ने मधुमिता हत्याकांड के अभियुक्त अमरमणि के भाई डॉ अजितमणि में विश्वास व्यक्त किया है. सपा के उपेक्षित पूर्व सांसद कुंवर अखिलेश सिंह ने कांग्रेस के पूर्व हर्षवर्धन सिंह को परदे के पीछे से समर्थन देकर उन्हें मज़बूत करने का प्रयास किया है. यहां की लड़ाई भाजपा, कांग्रेस और बसपा के मध्य होने की अधिक संभावना है. हालांकि यहां भी भाजपा ने योगी कार्ड भुनाने की कोशिश की है, पर योगी यहां के प्रत्याशी के रवैये से बहुत संतुष्ट नहीं हैं.

फोटो-*सुनील मल्होत्रा*

योगी आदित्यनाथ

जहां तक मंडल की देवरिया सीट का मामला है, भाजपा यहां अपने पूर्व सांसद लेफ्टिनेंट जनरल श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी पर ही भरोसा किया है, जो सपा के निवर्तमान सांसद मोहन सिंह को कड़ी टक्कर दे रहे हैं. बसपा ने यहां से कभी मुलायम सिंह के दाहिने हाथ रहे बालेश्वर यादव को टिकट देकर सपा की गणित गड़बड़ाने का प्रयास किया है. वहीं इससे सटे कुशीनगर जनपद में कांग्रेस के प्रत्याशी तथा यहां के राजघराने से संबंधित आरपीएन सिंह को सशक्त दावेदार के रूप में उतारा है जबकि उन्हें बसपा की अग्रिम पंक्ति के नेता स्वामी प्रसाद मौर्य टक्कर दे रहे हैं, जिन्हें क्षेत्र से बाहर का होने का काफी खामियाज़ा उठाना पड़ रहा है. इनकी जातीय आधार की लड़ाई में कांग्रेस प्रत्याशी की स्वच्छ एवं स्थानीय छवि काफी भारी पड़ रही है.

शिवा मिश्रा

feedback.chauthiduniya@gmail.com

एम जे अकबर

उदारवादी तालिबान जैसा कोई संगठन नहीं है

आवश्यकता अगर आविष्कार की जननी है, तो राजनीति कई बार उसका पिता. बराक ओबामा ने 20 जनवरी को राष्ट्रपति बनने के साथ ही एक मुहावरा गढ़ा, जिसका अस्तित्व ही नहीं है. युद्ध को पेंटागन के बजाय वित्त मंत्रालय की मार्फत जीतने की लालसा में ओबामा ने अफगानिस्तान में उदारवादी तालिबान नाम की चीज़ खोज निकाली. उनके उपराष्ट्रपति जो बिडेन ने तो इस फार्मूले का गणितीय समीकरण भी खोज लिया. समीकरण के मुताबिक केवल पांच फीसदी तालिबानी ही उग्रवादी हैं.

ओबामा की पहली बड़ी भूल का स्वागत है.

अफगानिस्तान और पाकिस्तान में लड़ाई केवल कुछ दाढ़ीवाले और बिना दाढ़ी के लोगों के ख़िलाफ़ नहीं है जो कि आत्मघाती मिशनरियों में बदल गए हैं. यह गंभीर संघर्ष तो एक वर्चस्ववादी अंधी धार्मिकता के ख़िलाफ़ है, जो मुस्लिम जगत को एक प्रतिगामी इलाक़े में बदल देना चाहता है और जिसे वह आधुनिकता के हरेक निशान से महरूम कर देना चाहता है. मसला चाहे राजनीतिक समझ का हो, या सामाजिक संदर्भों का.

वाशिंगटन के पास उदारवादी की एक आयामी परिभाषा है. कोई भी, जो अमेरिका के ख़िलाफ़ एक सक्रिय और तात्कालिक युद्ध को रोकता है, वह उदारवादी है. अब मुझे कुछ उदारवादी तालिबानों का परिचय कराने दें. वे अब विश्वप्रसिद्ध हैं. पिछले कुछ दिनों से तो हरेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय खबरिया चैनलों पर वे सबसे अधिक समय खा रहे हैं. वे स्वात से आए एक वीडियो क्लिप के सितारे हैं. इनमें से दो ने 17 वर्ष की लड़की चांद बीवी को जकड़ रखा है, जबकि एक तीसरा, जिसका चेहरा ढंका हुआ है, उस लड़की को 37 कोड़े लगाता है. केवल इस शक पर कि चांद बीवी को एक ऐसे आदमी के साथ देखा गया, जो उसका पिता या भाई नहीं था.

ओबामा को उस लड़की की चीखें रिकॉर्ड कर अपनी बेटियों को उदारवादी संगीत के तौर पर सुनाना चाहिए, जिसकी धुन पर वह अपने अफगान युद्ध में नाचना चाहते हैं.

ये तालिबान ओबामा की परिभाषा के अनुसार उदारवादी हैं. वे इस्लामाबाद की मार्फत अमेरिका के साथ एक समझौते पर पहुंचे हैं. पाकिस्तानी सैनिक अब उनके मध्ययुगीन क़िलों पर हमला नहीं करते, न ही अमेरिका के ड्रोन मिसाइल उन पर बमबारी कर रहे हैं. क़यास लगाने के लिए केवल यही बचा रह जाता है कि वे पेंटागन से पैसा पा रहे हैं ताकि युद्धविराम का बीमा बचा रहे. शायद उदारवाद की अथक तलाश में ओबामा और इस्लामाबाद सार्वजनिक जीवन में भी तोड़े-मरोड़े तथ्य को ही बढ़ावा देंगे. बर्दाश्त न किया जा सकने वाला स्वात का वीडियो अब झूठा बताया जा रहा है. यह जानना अच्छा रहेगा कि उन अभिनेताओं के नाम क्या थे, जिन्होंने बिल्कुल असल प्रतीत होने वाले इस वीडियो में काम किया. चांद बीवी ने भी इस तरह की किसी घटना से इंकार कर दिया है. बेशक, पर क्या किसी डॉक्टर को भेजा गया, ताकि ज़ख्मों की जांच हो सके.

तथाकथित उदारवाद के साथ इस तरह के समझौते दूसरी जगह भी हो रहे हैं. अफगानिस्तान में अमेरिका की निगहबानी में उसके मित्र हामिद करजई यही कर रहे हैं. करजई ने अभी हाल ही में एक ऐसे पारिवारिक क़ानून पर हस्ताक्षर किए हैं, जिसके मुताबिक अफ़ग़ान महिलाओं को डॉक्टर के पास जाने, शिक्षा पाने या नौकरी करने के लिए अपने पति की इजाज़त लेनी होगी. पति पूरी तरह शयनकक्ष का मालिक बन गया है, बच्चों की देखभाल भी केवल पिता या दादा को सौंपी जाएगी. औरतों को कोई अधिकार नहीं है. अफ़ग़ानिस्तान के उच्च सदन की एक सदस्य सीनेटर हुमैरा नमाती ने इस क़ानून को तालिबानी शासनकाल से भी घटिया और काला बताया है. जिसने भी विरोध में कुछ कहने की कोशिश की, उसे इस्लाम के ख़िलाफ़ बताया गया. यह तालिबान से क़तई अलग नहीं है. बेशक़, क़ुरान मुसलमान मर्दों को अपनी बीवियों की इच्छा के ख़िलाफ़ कुछ भी जबरन कराने से रोकता है. करजई भी अपने काम को जायज़ ठहराने के लिए वही पुराना राग आलाप रहे हैं. उनको इस साल अगस्त में होने वाले चुनाव में धार्मिक कट्टरपंथियों का समर्थन चाहिए. दबाव में समीक्षा की बात की जा रही है, लेकिन कोई भी यह नहीं जानता कि इसका आख़िर मतलब क्या है.

अगर यह लोकशाही है, तो इसे ज़रूर उदारवादी होना चाहिए. नहीं.

कोई भी यह समझ सकता है कि इराक के बाद अमेरिका युद्ध से बचना चाह रहा है, लेकिन हमें यानी इस क्षेत्र के लोगों को तो लगातार विश्वशक्ति के हस्तक्षेप के साथ रहना होगा, और तालिबान जैसी विनाशक विचारधारा को इस तरह की वैधता देने से ओबामा अपने लिए ही ख़तरा पैदा कर रहे हैं. यह ख़तरा अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान की सरहदों से भी आगे तक फैला हुआ है.

बेनज़ीर भुट्टो और आईएसआई ने 1994 में अमेरिका के ख़िलाफ़ लड़ाई के लिए तालिबान को पैदा नहीं किया था. इसका उद्देश्य अफ़ग़ानिस्तान के कई गुटों में बंटे क़बीलाई सरदारों को हराने का था, ताकि एक ऐसी तानाशाह हुकूमत स्थापित की जा सके जो अफ़ग़ानिस्तान के रणनीतिक हितों की बराबरी कर सके. आईएसआई ने *अफपाक* की कल्पना बहुत पहले ही कर ली थी. तब तक यह विचार वाशिंगटन के नीतिकारों के ख़्याल में भी नहीं आया था. पाकिस्तान ने बड़ी मेहनत से तालिबान को वैधता दिलवाने की कोशिश की और वह अमेरिका को भी तेल पाइपलाइन का राग गाकर अपने पक्ष में कर लेता, अगर ओसामा बिन लादेन ने पूरी योजना में पलीता नहीं लगा दिया होता. कुछ मायनों में स्थितियां अब भी नहीं बदली हैं. पाकिस्तान का हित तो इस्लामाबाद समर्थक तालिबान में ही है, यह उदारवादी सिद्धांत युद्ध से बेहाल अमेरिका को निकासी का रास्ता देने के लिए ही गढ़ा गया है. भारत की चिंताओं को सार्वजनिक तौर पर एक मुस्कान से ख़ारिज कर दिया जाएगा और निजी तौर पर नोटिस भी नहीं किया जाएगा.

इतिहास हमेशा से ही साफ-सुथरे तौर पर ख़त्म नहीं होता. न तो तालिबान और न ही पाकिस्तान वही रह गए हैं, जो 1994 में थे. तालिबान पहले से अधिक मज़बूत हुआ है, और पाक पहले की तुलना में कमज़ोर. इस बार

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

संविधान की कुछ बातें संशोधित नहीं हो सकतीं

भारत का संविधान एक प्रगतिशील दस्तावेज है. संशोधनों के द्वारा संविधान में नए बदलाव लाने की व्यवस्था ही वह बात है, जिससे संविधान समय के साथ प्रासंगिक बना रहता है. यह संशोधन लाने की शक्ति हमारी विधायिका यानी संसद के पास है. कोई यह सोच सकता है कि यहां सत्ताधारी दल के द्वारा ताक़त के ग़लत प्रयोग से अपने राजनीतिक एजेंडा के विस्तार और देश के हर क़ानून को बदल देने की बड़ी संभावना है.

हालांकि, शुक्र है कि ऐसी बात नहीं है. संविधान में कुछ ऐसे सिद्धांत और उपाय हैं, जो रद्द नहीं किए जा सकते और उनमें किसी भी परिस्थिति में संशोधन नहीं किया जा सकता. ये सिद्धांत और उपाय संविधान की मूल संरचना का हिस्सा हैं. संविधान की इस मौलिक संरचना की पवित्रता के सिद्धांत को माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने कई फ़ैसलों के द्वारा स्थापित किया है.

उच्चतम न्यायालय ने इस सिद्धांत की स्थापना यह तय करते हुए की थी कि संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों में संशोधन संभव है या नहीं. 1967 में, गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में 11 न्यायाधीशों की पीठ (पहली बार गठित) ने मौलिक अधिकारों में बदलाव के सवाल पर चर्चा की. इससे पहले इस बात पर शंकरी प्रसाद बनाम भारतीय संघ और सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य के मामले में भी चर्चा हुई थी. दोनों मामलों में अधिकारों के संशोधन की शक्ति अनुच्छेद 368 के आधार पर मानी गई थी, जिसके तहत संविधान के संशोधन का प्रावधान है. गोलकनाथ के मामले में 11 में से छह न्यायाधीशों ने यह फ़ैसला दिया कि मौलिक अधिकारों में किसी भी हालात में बदलाव नहीं किया जा सकता और शायद, भारतीय संवैधानिक इतिहास में सबसे महत्व-पूर्ण फ़ैसले का मार्ग प्रशस्त किया, जो कि 1973 में केशवानंद भारती बनाम भारतीय संघ के मामले में आया.

उच्चतम न्यायालय ने मूल संरचना के सिद्धांत को पहली बार 1973 के ऐतिहासिक केशवानंद भारती मामले में स्वीकार किया. इस मामले में मूल सवाल संविधान में संशोधन की राष्ट्रपति की शक्तिसे जुड़ा हुआ था. इस बार, न्यायालय ने यह फैसला दिया कि हालांकि संविधान का कोई भी हिस्सा, यहां तक कि मौलिक अधिकार भी, संसद की संशोधन की शक्ति से अछूता नहीं है.

उच्चतम न्यायालय ने मूल संरचना के सिद्धांत को पहली बार 1973 के ऐतिहासिक केशवानंद भारती मामले में स्वीकार किया. इस मामले में मूल सवाल संविधान में संशोधन की राष्ट्रपति की शक्तिसे जुड़ा हुआ था. इस बार, न्यायालय ने यह फैसला दिया कि हालांकि संविधान का कोई भी हिस्सा, यहां तक कि मौलिक अधिकार भी, संसद की संशोधन की शक्ति से अछूता नहीं है. साथ ही यह भी साफ कर दिया कि संविधान की मूल संरचना को किसी संवैधानिक संशोधन के द्वारा भी बदला नहीं जा सकता. यह पहली बार था जब उच्चतम न्यायालय ने मूल संरचना शब्द का प्रयोग किया था. हमेशा से उच्चतम न्यायालय ही संविधान की व्याख्या करता रहा है और संसद के लाए सभी संशोधनों पर फ़ैसला करने वाला भी है. इस मामले में 25वें संशोधन के साथ 24वें और 29वें संशोधनों की वैधानिकता को चुनौती दी गई थी. न्यायालय ने बहुमत से गोलकनाथ मामले को ख़ारिज कर दिया, जो कि नागरिकों को मौलिक अधिकारों में संशोधन की शक्ति से वंचित करता था. बहुमत का मानना था कि 24वें संशोधन से पहले अनुच्छेद 368 में ही संशोधन की करने की शक्ति और प्रक्रिया का उल्लेख है.

उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि अनुच्छेद 368 संसद को संविधान की मूल संरचना से छेड़छाड़ की शक्ति नहीं देता है और संसद के पास अनुच्छेद 368 के अंतर्गत ऐसे संशोधनों का अधिकार नहीं था, जो संविधान की मूल संरचना और ढांचे को क्षति पहुंचाने, कमज़ोर करने, नष्ट करने, बदलने, परिवर्तित करने का काम करते हों. यह निर्णय न केवल भारतीय संवैधानिक क़ानूनों के विकास में महत्वपूर्ण था बल्कि देश के संवैधानिक इतिहास में भी बड़ा मोड़ था. हालांकि केशवानंद भारती के मामले में उच्चतम न्यायालय ने केवल सिर्फ एक बाहरी खाका खींचा कि कौन से विषय मूल संरचना में आते हैं. इनमें संविधान की सर्वोच्चता, सरकार का गणतांत्रिक और लोकतांत्रिक स्वरूप, संविधान का धर्मनिरपेक्ष और संघीय ढांचा, राष्ट्र की एकता और अखंडता और संसदीय प्रणाली शामिल थीं. हालांकि यह ही पूरी परिभाषा नहीं है, संविधान के मूल ढांचे का स्वरूप उच्चतम न्यायालय के द्वारा समय-समय पर तय किया जाता रहेगा.

यह सिद्धांत 1975 में आपातकाल के समय बहुचर्चित इंदिरा गांधी बनाम राजनारायण मामले में भी प्रयोग हुआ. इंदिरा गांधी एक ऐसा संशोधन लाना चाहती थीं, जो उनके अवैधानिक चुनाव को क़ानूनी बना देता. यह संभव नहीं था. उच्चतम न्यायालय ने मूल संरचना के सिद्धांत का प्रयोग करते हुए अनुच्छेद 329-अ के उपबंध 4, जिसे 39वें संशोधन के द्वारा डाला गया था, को संविधान की मूल संरचना को नष्ट करने के आधार पर रद्द कर दिया. संशोधन में यह प्रावधान किया गया था कि भारत के प्रधानमंत्री से जुड़े चुनाव में किसी भी न्यायालय के पास कोई क़ानूनी शक्ति नहीं होगी. हाल में, मूल संरचना के इस सिद्धांत का मिनर्वा मिल्स बनाम भारतीय संघ के मामले में प्रयोग और विस्तार हुआ था. यहां नानी पालकीवाला ने सफलतापूर्वक यह दलील रखी कि न्यायालय अनुच्छेद 368 के उपबंध 4 और 5 को ग़ैरक़ानूनी करार दे. यह प्रावधान इंदिरा गांधी ने डाले थे और इनमें संसद को संविधान के नियमों में जोड़ या बदलाव के द्वारा संशोधन की पूरी शक्ति का प्रावधान था. न्यायालय ने कहा कि जैसा कि केशवानंद मामले में पहले ही निर्देशित था, संसद के संशोधन की शक्ति सीमित थी और वह संविधान में संशोधन कर इस शक्ति को अपार नहीं बना सकती. यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि यह मूल संरचना हमारे संविधान की रीढ़ की हड्डी है. यह न केवल क़ानूनों बल्कि लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता जैसे कई महत्वपूर्ण सिद्धांतों से बना है, जो भारतीय क़ानूनों की मूल भावना की रक्षा करते हैं. भारत के सभी नागरिकों को उच्चतम न्यायालय का शुक्रगुज़ार होना चाहिए क्योंकि अगर इस सिद्धांत का विकास नहीं होता, तो हर सरकार के हाथ में संविधान को बदलने की अपार ताक़त और नागरिकों का भाग्य होता. अगर यह मूल संरचना की अवधारणा नहीं होती, तो शायद आज हम एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं होते. सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा यह कहा गया था कि संशोधन की सीमित शक्ति स्वयं में संविधान के मूल स्वरूपों में है. इस ऐतिहासिक निर्णय ने यह तय किया कि संविधान सर्वोच्च है, संसद नहीं. संसद उस संविधान में बदलाव की अपार ताक़त नहीं रख सकती, जो उसके अस्तित्व का मूल है और उसकी शक्ति का स्रोत भी. अनुच्छेद 368 के तहत वह संविधान को दुबारा नहीं लिख सकती. केशवानंद मामला वैधानिक रचनात्मकता का एक उदाहरण है. इसने राष्ट्र और संविधान पर हो रहे वैसे हमलों से बचाया, जो संकीर्ण दलगत भावना से प्रभावित थे. उच्चतम न्यायालय ने इन निर्णयों के दौरान एक उद्देश्य को ध्यान में रखा है. अधिकतर संशोधन किसी भी तरह से कोई सामाजिक-आर्थिक सुधार से जुड़े नहीं थे और न ही उनका जनकल्याण से कुछ लेना-देना था. 39वें और 42वें संशोधन एक व्यक्ति या दल की ताक़त बढ़ाने के लिए थे. इन स्थितियों में न्यायालय ने जनता की स्वतंत्रता के लिए ये फ़ैसले लिए. इन संशोधनों ने साफ़ दिखाया है कि असीमित संशोधन का अधिकार तानाशाही का औज़ार बन सकता है.

हम यह कह सकते हैं कि उच्चतम न्यायालय ने मूल संरचना की अवधारणा रख कर संविधान की सर्वोच्चता स्थापित कर दी है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

प्रिय संपादक महोदय

आपका अख़बार देखा. कलेवर और तेवर देख कर निहायत खुशी हुई. एक उम्मीद बंधी कि ऐसे अख़बारों की बदौलत हम लोकमान्य तिलक के स्वराज से सुराज की ओर बढ़ने का सपना साकार कर सकते हैं, क्योंकि आज समय की मांग भी यही है. भारत और इंडिया में अंतर बढ़ता जा रहा है. सिस्टम अपने उद्देश्य में पूरी तरह असफल हो चुका है. इंडिया तरक्की कर रहा है. हमारी नाभिकीय शक्ति और आर्थिक आंकड़े इंडिया के बढ़ते रुतबे को दर्शाते हैं. पर आम आदमी को इसका कितना फ़ायदा मिल रहा है, यह एक बड़ा सवाल है. हम भले ही स्वतंत्र हैं, लेकिन आज भी अशिक्षा, ग़रीबी और बीमारी के गुलाम हैं. हर सुबह जब हम उठते हैं, तो हमें ये सोचना पड़ता है कि आज की रोटी कैसे नसीब होगी. हमें सरकार चुनने का अधिकार भले ही मिल गया हो, पर हमें आज भी उन उम्मीदवारों और नेताओं की जो हमें स्वराज ही नहीं, बल्कि सुराज भी दे सकें, ताकि हम सही मायनों में आज़ाद हो सकें. मुझे लगता है कि चौथी दुनिया जैसी सार्थक और धारदार पत्रकारिता से ही यह मुमकिन है. आपसे मेरा आग्रह है कि चौथी दुनिया की इस प्रकृति को कभी ख़त्म मत होने दीजिएगा.

सोम

आईआरएस, शिवाजी पार्क, शाहदरा, दिल्ली

प्रिय संपादक महोदय

रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा में मैं आपके लेखों को दिलचस्पी के साथ पढ़ता रहा हूं. अब चौथी दुनिया के पुनर्प्रकाशन एवं इसके संपादक के रूप में आपकी वापसी से मैं अत्यंत हर्षित हूं. पहला अंक मेरी दृष्टि से नहीं गुज़रा, अंक दो मेरे समक्ष है. *हिंदू होने का धर्म* लेख में हिंदू शब्द के संबंध में प्रचलित मान्यता को ही स्वीकार किया गया है, जबकि सच यह है कि आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व सुदूर अरब प्रायद्वीप में जन्म लेने वाले पैगंबर हज़रत मुहम्मद के वचनामृत में हिंदू शब्द का उल्लेख मिलता है.

आपका

मुनव्वर हुसैन

गोरखपुर

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

हम चाहते हैं कि आप अपने क्षेत्र के जागरूक संवाददाता बनें. आप अपने आसपास घट रही घटनाओं, जिनका संबंध, महिलाओं, बच्चों, किसानों, दलितों, अल्पसंख्यकों की समस्याओं उनके संघर्ष, उनपर होने वाले अत्याचार से हो, या आप अपने आसपास राजनीति, पुलिस और बाहुबलियों से जुड़ी घटनाओं पर रिपोर्ट भेजना चाहें, तो हम उनका स्वागत करेंगे. संपादकीय विभाग द्वारा चुनी गई प्रथम रिपोर्ट को तीन हजार रुपए का पुरस्कार दिया जाएगा. कृपया रिपोर्ट अपनी तस्वीर के साथ भेजें. अगर आप रिपोर्ट मेल करना चाहें, तो रिपोर्ट story.chauthiduniya@gmail.com पर भेज सकते हैं.

जब तोप मुकाबिल हो

वैसे तो हर चुनाव महत्वपूर्ण होता है, लेकिन पंद्रहवीं लोकसभा का चुनाव तो जैसे हमारे सामने सवाल ही सवाल लेकर खड़ा है. क्या ऐसी लोकसभा चुनकर हमारे सामने आएगी जिस पर अच्छे भविष्य को बनाने की ज़िम्मेदारी का अहसास देश को हो सके. सिद्धांत है, किताबें हैं, नैतिकता का ज्ञान है, धर्म है, लेकिन नहीं है तो सही आदमी. लोकतंत्र को चलाने की ज़िम्मेदारी राजनैतिक दलों पर है, और राजनैतिक दलों को जो लोग चला रहे हैं, वे सही आदमियों को दल के दायरे में लाना ही नहीं चाहते. दलों में जो सही लोग हैं, ज़मीन से जुड़े हैं, जिन्होंने सालों-साल अपना खून-पसीना एक कर अपना दल बनाया है, जब चुनाव आता है तो सबसे पहले उन्हें ही अनदेखा कर दिया जाता है. कहा जाता है कि ये लोग चुनाव नहीं जीत सकते, क्योंकि चुनाव में ख़र्च करने के लिए उनके पास पैसे नहीं हैं और विरोधियों को हराने के लिए बाहुबल नहीं है.

परिणाम होता है कि दलों के उम्मीदवार पैसे वाले और बाहुबल वाले हो जाते हैं, कार्यकर्ता या सही आदमी फिर अगले चुनाव की प्रतीक्षा करने लगता है कि शायद तब उसकी क़िस्मत जाग जाए. यह प्रतीक्षा कार्यकर्ता की मौत तक चलती है. कार्यकर्ताओं की आशाओं की मौत धीरे-धीरे लोकतंत्र की मौत में बदलने की ओर चल पड़ी है.

लोकतंत्र की संभावित मौत की आशंका ने एक ओर उन्हें चिंतित किया है, जिनका लोकतंत्र में भगवान की तरह भरोसा है, तो दूसरी ओर मीडिया के एक वर्ग को भी चिंतित किया है. मीडिया के दोनों अंगों के बड़े नाम वाले संस्थानों ने अभियान चलाया है कि जनता को जाग्रत करें और उसे सही लोगों को वोट देने के लिए प्रेरित करे. कई टेलीविज़न चैनलों पर फिल्म स्टार अपील करते नज़र आ रहे हैं, तो कई पर लोगों को प्रेरित करती छोटी-छोटी विज्ञापन फिल्में चल रही हैं.

कुछ अख़बार भी यह अभियान चला रहे हैं और यह अभियान लोगों का ध्यान खींच रहा है. पाठक ऐसे अभियानों से अपने को जोड़ रहा है. ज़रूरत अभी तत्काल इस बात की है कि स्वंयसेवी संस्थाएं इस तरह के अभियान से जुड़ें. स्वयंसेवी संस्थाओं पर उस क्षेत्र के लोगों का भरोसा होता है, क्योंकि ये संस्थाएं लोगों के दुख-सुख में खड़ी होती हैं, उनकी बेहतरी के लिए काम करती हैं. स्वंयसेवी संस्थाएं लोकतंत्र की बेहतरी के लिए अच्छे उम्मीदवार चुनें, जो कि इस अभियान से अभी तक नहीं जुड़ी है. इसी तरह सर्वोदय समाज और आर्य समाज जैसे संगठन भी लोकतंत्र को बेहतर बनाने के अभियान से जुड़े नहीं दिखाई देते. कभी सर्वोदय समाज के लोग, *वोट कैसे लोगों को दें* जैसे अभियान, मतदाता शिक्षण के नाम से चलाते थे. अब यह अभियान चलता नहीं दिखाई देता.

लोकतंत्र की संभावित मौत की आशंका ने एक ओर उन्हें चिंतित किया है, जिनका लोकतंत्र में भगवान की तरह भरोसा है, तो दूसरी ओर मीडिया के एक वर्ग को भी चिंतित किया है. मीडिया के दोनों अंगों के बड़े नाम वाले संस्थानों ने अभियान चलाया है कि जनता को जाग्रत करें और उसे सही लोगों को वोट देने के लिए प्रेरित करे. कई टेलीविज़न चैनलों पर फिल्म स्टार अपील करते नज़र आ रहे हैं, तो कई पर लोगों को प्रेरित करती छोटी-छोटी विज्ञापन फिल्में चल रही हैं.

ऐसे समय मीडिया द्वारा इस अभियान को हाथ में लेना एक सुखद संकेत है. इस अभियान को जितना तेज़ किया जा सके, उतना करना चाहिए और लोगों को समझना चाहिए कि लोकतंत्र किसी और की ज़िम्मेदारी नहीं, उनकी अपनी ज़िम्मेदारी है. लोगों को यह भी बताना चाहिए कि यदि अच्छे लोग नहीं चुने गए, तो उनका भविष्य कैसे अंधकारमय हो जाएगा. उन्हें यह भी बताना चाहिए कि संसद को दलालों का अड्डा बनाने से रोकने की ज़िम्मेदारी आम आदमी की सबसे ज़्यादा है. अगर अभी नहीं चेते, तो फिर चेतने का कोई मतलब नहीं होगा.

यह पहला चुनाव है, जिसमें नौजवान बड़ी संख्या में वोट डालेंगे. भारतीय राजनीति का यह सबसे दुखद क्षण है कि नौजवानों के सामने राजनीतिक क्षेत्र के किसी व्यक्ति का कोई उदाहरण ही नहीं बचा है, जो उसे उन जैसा बनने के लिए प्रेरित करे. उनके सामने उदाहरण है, तो बाहुबलियों के, संसद में दलाली कर रहे राजनेताओं के तथा सिनेमा से आये ऐसे लोगों के, जो जीतने के बाद अपने क्षेत्र से उतना ही रिश्ता रखते हैं, जितना ज़रूरी होता है. धर्मेंद्र जैसे सांसद तो यह भी नहीं रखते.

नौजवान बहुत जल्दी जाति, धर्म और संप्रदाय के बहकावे में आ जाते हैं. मीडिया को सबसे ज़्यादा ध्यान नौजवानों के दिमाग़ को लोकतंत्र के प्रति समर्पित बनाने में लगाना चाहिए. उन्हें उन नौजवानों को बताना चाहिए जो गांव में रहते हैं. जो पिछड़े, दलित, अल्पसंख्यक व कमज़ोर आर्थिक स्थिति के हैं कि एक रात की शराब या कुछ सौ रुपए में उनका भटकना उनके सुनहरे भविष्य को हमेशा के लिए काला कर देगा. आजकल राजनैतिक दल और उनके उम्मीदवार खुलेआम पैसे बांटते देखे जा रहे हैं. इस अपराध के ख़िलाफ़ लोग खड़े हों, इसके लिए भी मीडिया को कोशिश करनी चाहिए.

चुनाव का यह ऐसा समय है, जब मीडिया की इज्ज़त भी दांव पर लगी है. एक न्यूज़ चैनल की मालकिन स्वयं रिपोर्टर के रूप में राजनेताओं के इंटरव्यू ले रही हैं. वह नीतीश कुमार का इंटरव्यू ले रही थीं और नीतीश कुमार उन पर गरज रहे थे तथा कह रहे थे कि आप पत्रकार क्या हैं, आप दलाली करते हैं, लॉबिंग करते हैं, आप लोगों का चरित्र नहीं है आदि आदि. अब वह मोहतरमा ठहरीं मालकिन. कुछ बोल ही नहीं पा रही थीं. अगर कोई पत्रकार होता, तो आंख में आंख डाल कर कहता कि आप लोगों की बिरादरी से ज़्यादा दलाली पत्रकार नहीं करते, नीतीश कुमार जी. आप लोग हैं, जो पत्रकारों को भ्रष्ट करते हैं, उन्हें लोभ-लालच देते हैं, बिगाड़ते हैं. ठीक वैसे ही, जैसे पैसे वाले आप राजनेताओं को बिगाड़ते हैं और अपना दलाल बना लेते हैं. नीतीश कुमार के साथी राजनेता, चाहे वे किसी भी दल के हों, बड़े दलाल हैं, जो छोटे दलाल तलाशते रहते हैं. उस बेचारी मालकिन ने अपनी मजबूरियों के तहत नीतीश कुमार की गालियों को सारे पत्रकारों के लिए सुना. इस महिला को कहना चाहिए था कि आप लोकतंत्र बिगाड़ते हैं, पर मीडिया लोकतंत्र को ठीक करने का अभियान बिना आपसे पैसा लिए चला रहा है. लेकिन यह घटना संकेत देती है कि अब राजनेता खुलकर लोकतंत्र के चौथे खंभे की आलोचना करने लगे हैं और उन्हें मीडिया की बहुत सी बातें पसंद नहीं आ रही है.

पर चलिए, राजनेताओं को छोड़ते हैं. अभी तो लोकतंत्र की चिंता करते हैं और आम आदमी से आशा करते हैं कि वह पार्टियों के दायरे से ऊपर उठ कर उन्हें चुनेगा, जिनमें समझदारी होगी, जिनमें ज्ञान होगा, जिनमें देश-प्रेम होगा और जो लोकतंत्र के प्रति समर्पित होंगे. हमें लोकतंत्र को कट्टा तंत्र या दलाल तंत्र या राइफल तंत्र में बदलने से रोकने की कोशिश करनी ही होगी.

संपादक

feedback.chauthiduniya@gmail.com

इंसानियत के लिए एक धर्म यात्रा

भारतीय समाज में ऐसी घटनाएं कम ही देखने में आती हैं, जब सनातन संत और सूफ़ी एक साथ मिल कर देश में भाईचारे का संदेश देने निकल पड़े हों. हिंदू धर्म का नाम लेने वाले, हिंदुओं के प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले संगठन जब हिंदू धर्म के नाम पर घृणा का व्यापार करने की जी जान से कोशिश करते दिखाई दे रहे हों, तो हिंदू और मुसलमान संतों और फ़क़ीरों का साथ निकल कर मानवता, प्यार और भाईचारे का संदेश देना एक नई आशा का संचार करता है.

अयोध्या के नाम पर देश में खूब नफ़रत फैली, दंगे हुए, मौत का नंगा नाच खेला गया और भावनाओं का व्यापार हुआ. उसी अयोध्या के महंत जनमेजय शरण, जो रामजन्म भूमि निर्माण न्यास के अध्यक्ष हैं, ने यह बीड़ा उठाया कि अब वे अयोध्या के नाम पर लाशों का व्यापार नहीं होने देंगे और रामजन्म भूमि और बाबरी मस्जिद के नाम पर नफ़रत फैलानेवालों का विरोध करेंगे, तो उन्हें अजमेरशरीफ़ के सूफ़ी सैय्यद मौलाना जिलानी का साथ मिल गया. सूफ़ी मौ. जिलानी वर्ल्ड सूफ़ी काउंसिल के अध्यक्ष हैं और पिछले दस सालों से प्यार, मोहब्बत और भाईचारे का संदेश देश में दे रहे हैं.

महंत जनमेजय शरण जी ने सनातन संतों को अपने साथ जोड़ा तो सूफ़ी जिलानी ने सूफ़ी फ़क़ीरों को जो उड़ीसा, हैदराबाद और बड़ौदा की बड़ी दरगाहों के सज्जादा नशीन हैं, अपने साथ लिया. दस संतों और फ़क़ीरों की टोली ने दिल्ली से अपनी आवाज़ बुलंद की. इस ऐतिहासिक पहल को देश में हिंदुओं और मुसलमानों का ज़बरदस्त समर्थन मिल रहा है. ऐसी शानदार पहल का समर्थन भी अगर देश के लोग न करें, तो फिर यह देश धार्मिक अपराधियों के रहमोकरम पर चला जाएगा.

महंत जनमेजय शरण का कहना है कि हिंदू कोई धर्म है ही नहीं. धर्म तो सनातन है और सनातन वह है, जिसका तन मिट्टी में सना हो. हिंदू नाम अपभ्रंश है क्योंकि सनातन धर्म की दिशा-निर्देशक किताबों में हिंदू शब्द का उल्लेख है ही नहीं. इतना ही नहीं, धर्म के नाम पर संगठन बनाना ही हिंदू धर्म विरोधी है. यदि समझने के लिए सनातन धर्म को उसके अपभ्रंश नाम हिंदू धर्म से पुकारा जाए तो.

वहीं सूफ़ी जिलानी का कहना है कि अल्लाह कहता है कि तुम सारी ज़िंदगी मेरी इबादत करो और जीव-जंतुओं, इंसानों को सताओ तो तुम्हारी इबादत क़बूल नहीं होगी. वे यह भी कहते हैं कि तुम नमाज़ अता करने जा रहे हो, जो नमाज़ पर बैठ चुके हो और तुम्हारे कानों में आवाज़ आए कि कोई भूखा है, तो इबादत छोड़ कर पहले उसकी भूख़ मिटाओ, क्योंकि यही अल्लाह का हुक्म है.

दोनों व्यक्ति, जिनमें एक हिंदू है और एक मुसलमान, देश में साथ-साथ घूम रहे हैं और प्यार व मुहब्बत की अलख जगा रहे हैं. दोनों से जब पूछा कि आप चुनाव के समय ही क्यों देश में निकले हैं, तो दोनों का जवाब था कि हम अपने भक्तों और मुरीदों को तो हमेशा प्यार और मुहब्बत से रहने का संदेश देते हैं, पर जब हमने देखा कि ग़लत ताक़तें हिंदुओं और मुसलमानों को बरगलाने निकल पड़ी हैं, तो हम अपने आश्रमों और ख़ानक़ाहों में छटपटाने लगे. हमें लगा कि हम नहीं निकले तो हमें इंसानियत माफ़ नहीं करेगी. हमें इंसानियत के लिए उन सबको आवाज़ देनी चाहिए, जिनकी संख्या करोड़ों में है, पर जो ख़ामोश बैठे हैं. इसलिए होता यह है कि मुट्ठी भर लोग शोर करते हैं और भ्रम हो जाता है कि बस यही पुस्तक की आवाज़ है. इस बार अच्छे लोग निकले हैं, तो बुरे लोग घबरा गए हैं. ये दोनों संत और फ़क़ीर सवाल करते हैं कि क्यों चुनाव के समय ही राममंदिर कुछ ताक़तों को याद आता है. राम के नाम पर ये ताक़तें उन्माद पैदा करने की कोशिश करती हैं. महंत जनमेजय शरण और सूफ़ी जिलानी साफ कहते हैं कि यह मसला या तो आपसी भाईचारे से हल होगा या सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले से कोई हल निकलेगा. पर इस सवाल को चुनाव का सवाल बनाने की एक राजनैतिक दल की कोशिश को ये दोनों संत देशविरोधी मानते हैं और देश का सदभाव बिगाड़ने की सोची-समझी साज़िश बताते हैं. महंत जनमेजय शरण यह भी कहते हैं कि अब बाहरी ताक़तों को अयोध्या में घुसने नहीं दिया जाएगा और अयोध्या के लोग, जिनमें वहां के हिंदू और मुसलमान शामिल हैं, इस मसले को आसानी से हल कर लेंगे.

महंत जनमेजय शरण का कहना है कि हिंदू कोई धर्म है ही नहीं. धर्म तो सनातन है और सनातन वह है, जिसका तन मिट्टी में सना हो. हिंदू नाम अपभ्रंश है क्योंकि सनातन धर्म की दिशा-निर्देशक किताबों में हिंदू शब्द का उल्लेख है ही नहीं. इतना ही नहीं, धर्म के नाम पर संगठन बनाना ही हिंदू धर्म विरोधी है.

महंत जनमेजय शरण और सूफ़ी जिलानी तथा उनके साथ चल रहे सनातन संत और सूफ़ी किसी दल विशेष को वोट न दें, जो धर्म के आधार पर लोगों में भेदभाव फैला रहे हों, जो सांप्रदायिक हों, क्योंकि ऐसे लोग देश में विकास तो क़तई नहीं कर सकते. ये लोग देश को तानाशाही की तरफ ले जा सकते हैं. यह अभियान इस मायने में प्रशंसनीय है, क्योंकि इसे संतों और सूफ़ियों ने अपने आप आयोजित किया है. अभी तक संतों के नाम पर जो चेहरे सामने आते रहे हैं, उन्होंने प्यार, करुणा, त्याग, स्नेह व भाईचारा बढ़ाने की जगह बांटने वाली भाषा का इस्तेमाल किया. इन्होंने राम मंदिर और बाबरी मस्जिद के नाम पर पूरे देश को बांटने की कोशिश की. इनका बस चलता तो यह हवा, पानी, सूरज की रोशनी तक को हिंदू-मुस्लिम खानों में बांट चुके होते. ऐसे लोगों ने कभी ग़ैरबराबरी के ख़िलाफ़, बेकारी के ख़िलाफ़, महंगाई के ख़िलाफ़, भूख और बीमारी के ख़िलाफ़ न आवाज़ उठाई और न संघर्ष किया. दरअसल ये विषय इनकी चिंता के हैं ही नहीं, क्योंकि इन्हें देश की न तरक्की से मतलब है और न देश की एकता से. ये चाहते हैं कि देश दो धाराओं में बंट जाए और चुनाव के समय मुसलमानों के ख़िलाफ़ हिंदुओं को, भावनात्मक स्तर पर एकजुट कर सबका वोट ले सांप्रदायिक सरकार बनाई जाए.

सवाल सिर्फ इतना है कि देश के वे साधु-संत और सूफ़ी, जो इस मुहिम में शामिल नहीं हैं, कैसे शामिल हों. ज़्यादातर सभ्य, भले और स्वभाव से जो साधु-संत संस्कार के लोग होते हैं, वे राजनीति को बहुत ही घृणित मानते हैं. इसमें शामिल होना उन्हें कीचड़ स्नान जैसा लगता है. राजनीति पर बात करना भी उन्हें पसंद नहीं है. इसी स्वभाव का परिणाम हम देख रहे हैं कि संसद में ऐसे लोग पहुंचने लगे हैं, जिनका सामाजिक सरोकार से कोई मतलब नहीं है. जो अपराधी हैं और संसद में पहुंच कर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दलाली करने का सपना पाले हुए हैं. ऐसे ही लोगों की वजह से देश की समस्याएं बढ़ रही हैं, अपराध बढ़ रहे हैं, भूख बढ़ रही है और बढ़ रही है मौत. जब ऐसे लोगों की वजह से हालात सुधरने की कोई गुंजाइश नहीं रहती, तब फासिस्ट ताक़तें आगे बढ़ती हैं और लोकतंत्र को असफल बना सत्ता पर कब्ज़ा करती हैं. जनता इनके भुलावे में आ जाती है. हालांकि जब फासिस्ट सत्ता में आते हैं और लोकतंत्र ख़त्म होता है, तब पता चलता है कि हमने क्या खो दिया है. इसकी ज़िम्मेदारी इन्हीं अच्छे लोगों की होती है, जो सिर्फ बातें कर लोकतंत्र को अच्छा बताते हैं. न वोट देने जाते हैं और न दूसरों को जाने के लिए प्रेरित करते हैं. हमारा देश और हमारा लोकतंत्र उस चौराहे पर पहुंच गया है, जहां इसकी बागडोर उन हाथों में जाने वाली है, जिनमें नहीं जानी चाहिए. राजनैतिक रूप से नासमझ, अपराधी, दलाल संस्कृति में बढ़े व्यक्ति संसद में पहुंचने के लिए आतुर हैं और उन्होंने इसके लिए बड़े दांव भी लगा दिए हैं. अगर अच्छे लोग नहीं चेते, नौजवानों को अपना कर्तव्य याद नहीं आया और अपने भविष्य के लिए उन्होंने कदम नहीं उठाया, अगर किसानों को खेती के गिरवी रखे जाने और सारी किसानी व्यापारी और विदेशियों के पास बेच देने की साज़िश याद नहीं आई, तो आप निश्चित समझें कि हम उजाले की तरफ नहीं, अंधेरे की तरफ बढ़ रहे हैं. उन ताक़तों को, जो अंधेरा नहीं चाहतीं, लोकतंत्र को उसके सही रूप में चाहती हैं, चेतना होगा. सनातन साधुओं और सूफ़ियों की यह यात्रा इस कड़ी का महत्वपूर्ण प्रयास लग रही है. इसमें देश के सभी वर्गों, सभी तबक़ों और सभी धर्मों के लोगों को हाथ बंटाना चाहिए. अगर वे हाथ नहीं बढ़ाते, तो वे उन ताक़तों को बढ़ाने में परोक्ष मदद करते हैं, जिनका विश्वास लोकतंत्र में नहीं है, जो इंसान को इंसान से लड़ाना चाहते हैं और जो देश के संसाधनों पर कब्ज़ा करना चाहते हैं. यह दिन में देखे जाने वाले सपने जैसा है. इस देश का हिंदू सांप्रदायिक है ही नहीं, वह तो सभी को साथ ले चलने की बुनियादी आस्था में विश्वास रखता है. 'सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामया' की बात ये सांप्रदायिक ताक़तें भले न मानती हों, पर देश का आम हिंदू, जो दरअसल सनातनी है, मानता है. यहीं सनातन संत और सूफ़ी यात्रा का मतलब समझ में आता है और समझ में आता है इस देश के हिंदू-मुसलमानों की मिली-जुली ताक़त. आशा करनी चाहिए कि अच्छे लोग अपनी आवाज़ उठाएंगे और एक होकर बुरी ताक़तों का मुक़ाबला करेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जनता के दल-बदल का असर

■ नेताओं का पाला बदलना बेमानी

प्रभात कुमार शांडिल्य

चुनाव का मौसम आते ही चुनाव विश्लेषकों और व्याख्याकारों की चांदी हो जाती है. हर टीवी चैनल अख़बार साप्ताहिक और पाक्षिक राजनीतिक पत्र-पत्रिकाओं की पूछ बढ़ जाती है. पहले यह सब शौक़िया होता था. अबकी बाज़ारू अर्थव्यवस्था में इस धंधे ने अपने आप में बड़े मौसमी व्यापार का रूप धर लिया है. सभी विश्लेषक और व्याख्याकार अपने को विद्वान और सर्वज्ञाता साबित करने के लिए ख़ून-पसीना एक कर देते हैं. विभिन्न राजनीतिक दलों की ओर से इनकी भीतर-भीतर बुकिंग कर ली जाती है, और बाहर-बाहर ये लोग अलग-अलग संस्थाओं, संस्थानों, समाचार माध्यमों, अख़बारों और टीवी चैनलों के लिए काम करने वाले सज्जन की तरह दिखते हैं. लंबी-चौड़ी प्रश्नावलियों के जरिए तथाकथित सवेक्षण करा कर जनता की रायशुमारी कर उस पर अपने निष्कर्षों के साथ श्रव्य-दृश्य समाचार माध्यमों में आकर घंटों चर्चा करते हैं. अख़बारों और राजनीतिक पत्र-पत्रिकाओं में भी उनके निष्कर्ष छपते हैं. सबमें अपनी-अपनी छवि एवं अपने-अपने राजनीतिक स्वार्थों का ख़ास ख़याल रखा जाता है. इन सर्वेक्षणों और निष्कर्षों के आधार पर राजनैतिक दलों के नेता, कार्यकर्ता और समर्थक चाय के प्यालों व शराब के जाम के साथ अपनी औक़ात के अनुसार बहस करते हैं और फिर दूसरे दिन चुनाव प्रचार में निकल जाते हैं. जनता की समस्याओं की बात करने या जनता के मुद्दों को जानने या उठाने के बदले चुनाव शास्त्र के कथित विशेषज्ञों की राय मतदाताओं पर थोपते रहते हैं. जब चुनाव परिणाम अपेक्षा के अनुरूप नहीं आता, तो बगलें झांकने लगते हैं, बहाना ढूंढ़ते हैं और कुछ नहीं हुआ, तब चुपचाप कुछ दिनों तक सार्वजनिक मंचों और परिदृश्य से ग़ायब हो जाते हैं. एक दल की जीत ने दूसरे के हारने, तीसरे की यथास्थिति बनाए रखने, चौथे के बारे में अनिश्चितता बरक़रार रखने और पांचवें-छठे के नगण्य प्रदर्शन की भविष्यवाणी करने वाले को कभी नहीं देखा गया कि चुनाव पूर्व उनके द्वारा किए गए भविष्यफल प्रकाशन और प्रसारण में हुई चूक के लिए कभी उनके कारणों का प्रकाशन और प्रसारण उनके द्वारा चुनाव परिणामों के आने के बाद किया गया हो. चुनाव परिणाम आ जाने के बाद बस वे धूल झाड़ कर एक बार फिर अगले चुनावी मौसम का इंतज़ार करते रहते हैं. नए-नए जजमानों की तलाश में जुट जाते हैं.

चुनाव पूर्वानुमानों के ग़लत हो जाने के पीछे वास्तव में राजनीतिक दलों के नेताओं और चुनाव शास्त्र के विशेषज्ञों की उस ग़लती का हाथ होता है, जिस क्रम में वे जनता की नब्ज़ टटोलने में विफल हो जाया करते हैं. रोज़ी-रोटी, सड़क-पानी, बिजली, उद्योगधंधे, स्वास्थ्य जैसे मुद्दों को जनता का मुद्दा बता कर सहज रूप से भूल जाया करते हैं कि ज़मीनी हक़ीक़त जनता की इज़्ज़त से खिलवाड़ का भी हो सकता है. क्षेत्रविशेष के भूगोल और इतिहास की चर्चा करते हुए विशेषज्ञ सामाजिक मूल्यों, लोकतांत्रिक मूल्यों और परंपराओं के ऊपर संविधान और क़ानून को लाद देते हैं. अपनी बात को वैज्ञानिक आधार देने के लिए ये विशेषज्ञ अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, यंत्रशास्त्र, तंत्रशास्त्र, त्रिकोणमिति सबकी चर्चा के साथ सांख्यिकीशास्त्र का भी सहारा लेते हैं एवं समाजशास्त्र को भूल जाते हैं. दिक़्क़त ये है कि ये सब लोग अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से उबर नहीं पाते. संभावनाओं और आशंकाओं की चर्चा करते हुए ये विशेषज्ञ जाति, धर्म, क़ानून, न्याय, व्यवस्था, देश, प्रदेश, विदेश के घटनाक्रम एवं घटनाचक्र पर अपनी राय पहले से बना कर चलते हैं और फलाफल को उन्हीं रंगीन चश्मों से देखते-दिखाते हैं.

चुनाव परिणाम आमतौर पर मतदाताओं की इच्छा का प्रतीक होता है और वही प्रतिबिंबित करता है, जो लोग चाहते हैं. यह 'चाहना' स्वयमेव भी हो सकता है. जबरन भी हो सकता है. धोखाधड़ी और तिकड़मों के सहारे भी हो सकता है. कभी-कभी यह 'चाहना' और 'प्रतीक' बोगस मतदान कभी बूथ लूट तथा कभी बूथ समर्पण की वजह से भी हो सकता है. सन 1967 के पहले तक बोगस मतदान या पैसे से मत ख़रीदने का काम होता था. वर्ष 1967 से 1977 के पहले तक संपन्न चुनाव में बूथलूट अर्थात जबरन वोट डाल देने, वोट लूटने की प्रथा का इज़ाफ़ा हुआ, नया आयाम जुड़ा मतदान प्रक्रिया में. बिहार के छात्र आंदोलन तथा इमरजेंसी के बाद संपन्न 1977 के चुनाव में 'बूथ समर्पण' की शुरुआत हो गई, जिसमें पूरे गांव के मतदाताओं ने एक राय से पांच-दस लोगों को पूरे मतदाताओं की ओर से किसी खास चुनाव चिह्न पर वोट डालने की खुली छूट दे दी.

जनगणना की ग़लतियों, मतदाता सूचियों में फर्जी नामों के समावेश का रोज़-रोज़ बढ़ना हर क्षेत्र में बढ़ते भ्रष्टाचार, अपराधियों के राजनीतियों में धमाकेदार प्रवेश के साथ-साथ राजनीतिक दलों द्वारा अनुशासित एवं निष्ठावान नेताओं व कार्यकर्ताओं को दरकिनार कर उनके बदले जितने योग्य प्रत्याशियों को खड़ा करने की होड़ ने स्थिति को और बिगाड़ दिया. सत्ता में बदलाव और सरकारों को बदलना दोनों अलग-अलग मामले हैं. नेताओं के दल-बदल से सरकारें बदल सकती हैं, किंतु सत्ता में बदलाव के लिए जनता (मतदाता) का दल बदलना ज़रूरी होता है. आज़ादी मिलने के समय कांग्रेस पार्टी के पास अंग्रेज़ों के हाथ से सत्ता आ गई. नेता दल बदलते रहे. समाजवादी पार्टी, कृषक-मज़दूर प्रजा पार्टी, प्रजा समाजवादी पार्टी, जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी जैसे राजनीतिक दल बने पर सत्ता नहीं बदली. इन दलों में एक से एक बड़े दिग्गज नेता थे. आजादी मिली 1947 में और पहली बार सत्ता बदली 1967 में जब गैर-कांग्रेसवाद की आंधी आई. वास्तव में जिसे हम आंधी कह रहे हैं, वह थोक भाव से मतदाताओं (जनता) द्वारा किया गया दल बदलना था, जिसके कारण कई राज्यों के कांग्रेस पार्टी का तंबू उखड़ गया. 1967 से 1971 तक फिर नेता दल-बदल करते रहे. सरकारें बदलती रहीं, किंतु सत्ता नहीं बदली. आयाराम और गयाराम ने ऐसा खेल दिखाया कि एक समय हरियाणा के राजभवन में शपथपत्रों की कमी हो गई. फिर नए शपथपत्र जल्दी-जल्दी छपवाए गए और नए मंत्रियों का शपथ-ग्रहण समारोह कुछ घंटों के लिए टाल देना पड़ा. वर्ष 1971 में जनता मतदाताओं ने एक बार फिर दलबदल किया और इंदिरा गांधी के हाथ सत्ता की बागडोर सौंप दी. संगठन कांग्रेस, भारतीय क्रांति दल, स्वतंत्र पार्टी, जनसंघ और समाजवादी पार्टी के ग्रैंड एलायंस को धूल चटा दिया. फिर आया 1977 का वर्ष. इमरजेंसी में चुनाव हुए, नेता पीछे रह गए, जनता के दबाव में जनता पार्टी का गठन हो गया. जनता आगे जा चुकी थी. मतदाताओं ने दलबदल कर लिया था. इंदिरा गांधी हवा हो गईं और 81 वर्ष की उम्र में मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बन गए. 1977 से 1980 तक नेता दल बदलते रहे, सरकारें बदलती रहीं, प्रधानमंत्री तक बदले विभिन्न राज्यों से लेकर केंद्र तक उथल-पुथल का दौर रहा. पार्टियां टूटीं, बिखरीं. सन् 1980 के लोकसभा चुनाव में जनता ने फिर एक बार दल बदल किया. कांग्रेस की एक बार फिर से सत्ता में वापसी हुई. इंदिरा गांधी सत्ता में आईं. 1984 में उनकी हत्या हुई. राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने. 1989 तक जनता ने कांग्रेस पार्टी पर भरोसा किया. उसी वक्त विश्वनाथ प्रताप सिंह बोफोर्स की मशाल लेकर कांग्रेस से अलग हो गए. चुनाव हुए, कांग्रेस को विपक्ष में बैठना पड़ा. यह भी जनता के दल-बदल का परिणाम था. निश्चित तौर पर यह दल-बदल विश्वनाथ प्रताप सिंह की बात पर भरोसा करके हुआ था. परिणामस्वरूप विश्वनाथ प्रताप सिंह 1989 में प्रधानमंत्री बने. प्रधानमंत्री तो बन गए, पर उनके साथ दे-वीलाल और चंद्रशेखर के झगड़े जनता के सामने उजागर हो चुके थे. जनता ने फिर दल-बदल किया. इस बीच इंदिरा गांधी की 1984 में हुई हत्या और 1990 में चुनाव अभियान के दरम्यान हुई. राजीव गांधी की हत्या से कांग्रेस को सहानुभूति लहर का लाभ मिला और केंद्र की सत्ता में आ गई. राजनीतिक मैदान से रिटायर्ड हो चुके खिलाड़ी पीवी नरसिंह राव प्रधानमंत्री बन गए. पांच वर्ष का अपना कार्यकाल पूरा करते-करते उन्होंने अपने को और पार्टी को इतना अलोकप्रिय बना दिया कि जनता ने फिर दल बदल कर कांग्रेस को सत्ता से बाहर किया. खिचड़ी सरकारों का युग आया. चूंकि जनता ने किसी को स्पष्ट बहुमत नहीं दिया था. दो साल में देश ने तीन प्रधानमंत्री देखे. 16 दिन के लिए अटल बिहारी वाजपेयी, 10 माह के लिए देवगौड़ा और फिर एक वर्ष के लिए इंद्रकुमार गुजराल. जनता ने पाला बदला और अटल बिहारी बाजपेयी को पांच साल के लिए कुर्सी सौंप दी. नेताओं की करतूत से आज़िज़ जनता, जिसने 1999 में वाजपेयी जी को कुर्सी दी थी, उन्हें भी पांच साल के बाद जब वे और उनकी पार्टी 'फील गुड' और 'भारत उदय' जैसे 'वायरस' से पीड़ित हो गए तो उन्हें भी 'धरती पकड़' बना दिया. एनडीए का करिश्मा केंद्र में ख़त्म हो गया. प्रायोजित ओपेनियन पोल और एक्जिट पोल काम नहीं आए. जिस भारतीय जनता पार्टी को 1998 में 181, सन 1999 में 182 सीटें देकर जनता ने लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी बनाया था, 36 पार्टी और उसके सहयोगी दलों को मिलाजुला कर 183 सीटें दीं और विपक्ष में बैठने का फरमान दे डाला. बतौर नतीजा पार्टियों में नए गठजोड़ का सिलसिला शुरू हुआ, यूपीए का गठन हुआ, कांग्रेस के नेतृत्व में सरकारें बनीं. कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी प्रधानमंत्री बनते-बनते रह गईं. डॉ मनमोहन सिंह कुर्सी पर काबिज हुए. यह सब भारत की जनता की आकांक्षाओं का दबाव था. सन 2004 में भी चुनाव विश्लेषकों ने दूर-दूर कांग्रेस के सत्ता में आने से इंक़ार दिया था और किसी तरह वाजपेयी के प्रधानमंत्री बनने की संभावना जताई थी. यह सब येन-केन-प्रकारेन होना ही था. चुनाव विश्लेषकों और ज्योतिषियों में एकमात्र केएन राव ने चुनाव परिणाम आने के बाद यह बड़प्पन दिखलाया. उन्होंने एक अख़बार में लिखा कि उनसे गणना में चूक हुई. उनके अलावा किसी ने यह साहस और बड़प्पन नहीं दिखाया. आज जो लोग समाचार पत्रों, टीवी चैनलों में चुनाव की भविष्यवाणी बेच रहे हैं, उनसे भी जनता 15 मई के बाद हिसाब मांगेगी, क्योंकि तब तक वह नेताओं से अपना हिसाब चुका-चुकी होगी.

चुनाव परिणाम आमतौर पर मतदाताओं की इच्छा का प्रतीक होता है और वही प्रतिबिंबित करता है, जो लोग चाहते हैं. यह 'चाहना' स्वयमेव भी हो सकता है. जबरन भी हो सकता है. धोखाधड़ी और तिकड़मों के सहारे भी हो सकता है. कभी-कभी यह 'चाहना' और 'प्रतीक' बोगस मतदान कभी बूथ लूट तथा कभी बूथ समर्पण की वजह से भी हो सकता है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

भूख, बेहाली और ग़रीबी में हवाई भाषणों की धूम

■ हाल यूपी के नक्सल इलाकों का

विंध्य की पहाड़ियों से घिरा यूपी का नक्सल प्रभावित इलाका. भूख, बेहाली और लाचारगी से जूझते नज़र आ रहे हैं. इन दिनों चुनावी माहौल है और इस इलाके के तीन संसदीय क्षेत्रों में विकास की बयार बहाने के हवाई भाषणों की धूम है. यह वही क्षेत्र है, जहां हिंदी साहित्य को रहस्य-रोमांच से भरपूर उपन्यास देने वाले देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकांता संतति लिखने के लिए एक से बढ़ कर एक अद्भुत कल्पनाएं कीं. पर इस इलाके के नेता और शासन-प्रशासन में बैठे अफसर चंद्रकांता के अय्यारों से भी ज़्यादा सयाने और ख़तरनाक हैं. यह लोग एक तरफ तो भूख, ग़रीबी और तंगहाली से जूझती यहां के लाखों आदिवासियों और वनवासियों को झूठे वादों के सब्ज़बाग़ दिखाते रहे, तो दूसरी ओर कुछ बड़ी नक्सली वारदातों के बाद यहां के लिए आए अरबों रुपए के बजट से अपनी ही जेबें भरते रहे.

इस इलाक़े को बीते कुछ वर्षों से लगातार नक्सल प्रभावित इलाक़ा कह कर प्रचारित किया जा रहा है. लखनऊ और दिल्ली में बैठे लोगों के लिए चंदौली, मिर्जापुर और राबर्ट्सगंज की ली जा सकती है. इस ज़िले को पूरे उत्तर प्रदेश का पावर हाउस कह सकता है. सात बिजली उत्पादन केंद्र हैं यहां, मसलन आबरा तापाय परियोजना, आबरा जलविद्युत परियोजना, अनपरा थर्मल और कनौरिया पावर प्रोजेक्ट. कुछ नई विद्युत परियोजनाएं शुरू होने वाली हैं और उस वास्ते किसानों की ज़मीनों के अधिग्रहण की तैयारी चल रही है. किसान व ग्रामीण मज़दूर परेशान हैं. लोग खुलकर नहीं बोलते. एक डर यह भी है कि अगर ज़्यादा विरोध प्रदर्शन करेंगे, तो उन्हें नक्सली बताया जा सकता है. आश्चर्यजनक यह भी है कि यूपी समेत कई राज्यों को बिजली देने वाले इस ज़िले में बड़ी संख्या में ऐसे गांव हैं, जहां अब तक बिजली ही नहीं पहुंची. चिराग तले अंधेरा पुरानी कहावत है - यहां तो पावर हाउस तले अंधेरा है. ऐसे गांवों में ओबारा नाम का गांव भी शामिल है, जिसके नाम पर पावर प्रोजेक्ट चल रहा है. इस गांव के लोग अब भी अंधेरे में ही रहते हैं. यहां के लोग पावर प्रोजेक्ट का प्रदूषण तो झेलते ही हैं, बिजली भी नहीं मिलती. यहां काफी खदानें हैं. उनके मालिक भी यहां के ग़रीबों का जम कर शोषण करते हैं. दूसरी तरफ अरबों के ख़र्च के बावजूद यहां का विकास हर जगह अधूरा ही है. चंदौली ज़िले में कर्मनाशा नदी के कहुअवा घाट पर दो ग्राम पंचायतों के बाइस गांवों और क़रीब दस हज़ार आबादी को नौगढ़ से जोड़ने वाला पुल का उदाहरण लिया जा सकता है. नेताओं के ढेरों वादों के बाद पिछले लोकसभा चुनाव के दौरान यह पुल बनना शुरू हुआ था. अभी तक इसका एक छोर भी पूरा नहीं हो पाया है. नौगढ़ के संतोष बताते हैं - बारिश के दिनों में नौगढ़ कस्बे तक जाने के लिए आठ किलोमीटर के बजाए 65 किलोमीटर की दूरी तय करनी पड़ती है क्योंकि बाक़ी रास्ते बाढ़ की वजह से बंद हो जाते हैं. सेतु निगम और चंदौली प्रशासन की यह लापरवाही इस दृष्टि से भी आश्चर्यजनक है क्योंकि यह वही इलाका है, जहां 2004 में नक्सलियों ने बारूदी सुरंग के जरिए 15 जवानों को उड़ा दिया था. यही हाल राबर्ट्सगंज ज़िले की दुद्धी तहसील के म्योरपुर ब्लॉक के सागोबांध गांव में बन रहे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र का भी है. छत्तीसगढ़-झारखंड सीमा से सटे इस इलाक़े में यह अस्पताल काफी समय से अधूरा पड़ा है. इस इलाक़े में चालीस किलोमीटर की परिधि में कोई सरकारी अस्पताल नहीं. ऐसे में ज़्यादातर ग्रामीणों की सेहत झोलाछाप डॉक्टरों के हवाले ही है. पर यहां के ग़रीबों को इन सब बातों की आदत है. उन्हें सिर्फ दो वक्त का खाना और कपड़ा मिल जाए, तो ख़ुद को सबसे ज़्यादा सुखी मानते हैं. यहां हाल-फिलहाल तीनों ज़िलों के विकास के लिए छह सौ करोड़ रुपए दिए गए हैं, पर एक हक़ीक़त यह भी है कि यहां लोग आज भी भूख से मरते हैं. खाने को गेहूं चावल दूर की बात, जंगली फल और कोदो जैसे अनाज भी ग़रीबों को नहीं मिल पा रहे. औरतें एक धोती में ज़िंदगी बिता देती हैं. यह सब यहां कभी भी देखा जा सकता है. विकास का फ़ायदा चंद अफसर-नेता उठा रहे हैं. यह ठीक है कि नक्सली फिलहाल शांत हैं, पर भ्रष्टाचार हालात को कभी भी भड़का सकते हैं. छत्तीसगढ़, झारखंड और बिहार नक्सलवाद की आग में धधक रहे हैं और असंतोष का पेट्रोल इधर भी बिखरा हुआ है.

अखिल गौड़

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पाकिस्तान, तालिबान और डी-कंपनी

क्या है स्वात घाटी

स्वात यानी पाकिस्तान का स्विट्ज़रलैंड. यही स्वात घाटी आज आतंक का पर्याय बन चुकी है. यह कभी पाकिस्तान में हनीमून मनाने वालों की सबसे पसंदीदा जगह हुआ करती थी. स्वात पाकिस्तान की नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रांत का एक ज़िला है. पाकिस्तान की राजधानी से इसकी दूरी महज 100 मील की है. हिंदुकुश की पहाड़ियों में बसी स्वात घाटी 1969 तक रियासत रही. उसके बाद पाकिस्तान के नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर इलाक़े में इसका विलय हो गया. अफ़ग़ानिस्तान की सीमा से सटे स्वात के अधिकांश भाग पर 2008 के शुरू में ही तालिबान का कब्जा हो गया था, जिसके चलते यहां का पर्यटन ख़त्म हो गया. हाल के दिनों में भले ही स्वात का नाम इस्लामी कट्टरवाद और आतंक से जुड़ा हो, लेकिन एक समय था, जब इसकी ख़ूबसूरत वादियों में कई धर्म और संस्कृतियां भी पली बढ़ी. स्वात का पूरा इलाक़ा स्वात नदी के इर्द-गिर्द बसा है. यह स्वात नदी ऋग्वेद में सुवस्तु नदी के नाम से है. सिकंदर से लेकर चंद्रगुप्त तक कहीं न कहीं स्वात इन सबके साम्राज्य का हिस्सा रहा. दूसरी सदी से स्वात धीरे-धीरे बुद्ध धर्म का केंद्र बनता गया. आज भी बुद्ध धर्म से जुड़े चिह्न इस इलाक़े में नज़र आते हैं. क़रीब डेढ़ करोड़ की जनसंख्या वाले इस इलाके की बसावट में भी विविधता है. स्वात के इलाक़े में पश्तूनों, कोहिस्तानियों और गुर्जरों की बहुलता है. इस इलाक़े में पश्तो ही बोलचाल की भाषा है. अपनी ख़ूबसूरती और धार्मिक विरासत के कारण कभी स्वात सैलानियों के आकर्षण का केंद्र रहा. वही स्वात आज पूरी तरह से तालिबानी कब्जे में हैं. 2007 की शुरुआत से मौलाना फज़लुल्लाह की अगुआई में तहरीक़-ए-नफाज़-ए-शरीएत-ए-मोहम्मदी संगठन ने इस पूरे इलाक़े में कब्जा जमाने की शुरुआत की. 2008 तक इस पूरे इलाक़े पर पाकिस्तानी सरकार की जगह इस संगठन का कब्जा हो चुका था. 2009 में इस संगठन ने जब पूरे इलाक़े में लड़कियों की पढ़ाई बंद करा दी, तो पूरी दुनिया का ध्यान इस इलाक़े की तरफ गया.

राहुल मिश्र

पाक सरकार और तालिबान के बीच फरवरी में हुआ स्वात घाटी का समझौता धर्म की आड़ में चल रहे गोरखधंधे को भी उजागर करता है. भारत का भगोड़ा और अंतरराष्ट्रीय अपराध जगत का एक सरगना दाऊद इब्राहिम और आईएसआई की पनाह में चल रही डी कंपनी, धर्म और सरकार की इस सांठगांठ में एक अहम किरदार अदा कर रहे हैं.

इस्लामाबाद से महज 100 मील की दूरी पर स्थित स्वात घाटी कभी अंतरराष्ट्रीय पर्यटन का गढ़ हुआ करती थी. इसे पाकिस्तान की जन्नत के नाम से भी जाना जाता था. आज स्वात पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान के तालिबानी और अल-क़ायदा आतंकियों की पनाहगाह बन चुका है. स्वात घाटी में रह रहे परिवार पलायन कर रहे हैं. हज़ारों मारे जा चुके हैं. सैकड़ों स्कूलों और अस्पतालों की इमारतें ढहाई जा चुकी है. इन सबके बीच जब से अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के सीमावर्ती इलाक़ों में ड्रोन मिसाइलों का कहर तेज़ कर दिया है, हर नस्ल के आतंकी स्वात का रुख कर रहे हैं. स्वात इनकी बर्बरता से लहूलुहान हो चुका है और आम नागरिकों को छोड़ कर सभी स्वात की इस लूट में सहभागी बने हुए हैं.

दुनियाभर में स्वात घाटी नायाब और बेशक़ीमती पत्थर पन्ना के लिए जाना जाता है. अफ्रीका के बाद एशिया की सबसे महत्वपूर्ण खान यहीं मौजूद है. फरवरी के समझौते ने इस खान को तालिबान के हवाले कर दिया. सूत्रों के मुताबिक हज़ारों रुपए मूल्य के ये पत्थर कौड़ियों के भाव ख़रीदे जा रहे हैं और तस्करी कर भारत के जयपुर के जौहरियों के पास पहुंचा दिया जा रहा है, जहां इनकी सफाई और नक्काशी कर इसे बैंकॉक, सिंगापुर और इज़राइल के बाज़ारों में बेचा जा रहा है. चूंकि पाकिस्तानी अलक़ायदा की अंतरराष्ट्रीय तस्करी में सीधी पकड़ नहीं है, लिहाजा आईएसआई की मदद से दाऊद इब्राहिम की डी-कंपनी का सहारा लेकर तस्करी कराई जा रही है. डी कंपनी और आईएसआई के कुछ अधिकारी इस तस्करी से अपनी जेब तो भर ही रहे हैं, साथ-साथ इस काली कमाई से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद को फाइनेंस भी कर रहे हैं. इनके इस गोरखधंधे में इस्लामाबाद और पेशावर के कई रईस व्यापारी भी शामिल हैं, जो स्वात की संपदा को लूटने में लगे हैं. तालिबानी आतंकवादी स्वात के लेकर खाड़ी देशों तक फैले तस्कर गिरोह को डी कंपनी संचालित कर रहा है और इसी के जरिए दुनियाभर के कई सफेदपोशों के मुनाफे का काला कारोबार चलाया जा रहा है. आईएसआई की निगहबानी में चल रहा दाऊद इब्राहिम का यह काला कारोबार तेज़ी से फैल रहा है. जहां किसी समय दाऊद को भारत के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जाता था, वहीं आज पाकिस्तान में हो रहे हर गुनाह को दाऊद और उसकी डी कंपनी अंजाम दे रही है. जिस तरह कभी मुंबई में जुर्म की दुनिया पर दाऊद की पकड़ थी, ठीक उसी तरह आज दाऊद पाकिस्तान की स्याह दुनिया का बेताज बादशाह बन चुका है. उसके लश्कर-ए-तैय्यबा से संबंध पहले से ही जगजाहिर हैं. इसके साथ ही दाऊद दक्षिण एशिया में सोना, परमाणु बम से जुड़े सामान, घातक हथियारों और नशीले पदार्थों की तस्करी में पिछले दस सालों से लिप्त है. मामला इतना संगीन है कि दाऊद के नाम पर

स्वात घाटी में अमेरिका को चुनौती

पाकिस्तान के राष्ट्रपति आसिफ अली जरदारी ने तालिबान के आगे घुटने टेकते हुए 13 अप्रैल 2009 को निज़ाम-ए-अदल समझौते को क़ानून बना दिया. इससे पहले 13 अप्रैल की सुबह पाकिस्तान की लोकतांत्रिक हुकूमत ने कैबिनेट में मशविरा करने के बाद अदल समझौते को नेशनल एसेंबली भेजा. ख़ौफ़ के साए में पाकिस्तानी सांसदों ने समझौते को भारी बहुमत से पारित कर दिया. इस नाटक के बाद राष्ट्रपति ज़रदारी को तालिबान के साथ हुए इस क़रार को क़ानून बनाने में देर नहीं लगी. स्वात में शरीयत लागू करने का क़ानून पारित कर दिया गया. स्वात घाटी में दोहरी न्यायिक व्यवस्था पिछले कई सालों से चली आ रही है. शरीयत अदालतें अपना काम बखूबी अदा कर रही हैं. 2007 से स्वात पर तालिबानियों की पकड़ मज़बूत होने लगी, तालिबानी फरमान के साथ-साथ नई शरीयत अदालतें भी बनती रहीं. इसी दौर में जहां स्वात में पाकिस्तान की सरकारी मशीनरी, कोर्ट, पुलिस और सेना अर्थहीन हो गई, तालिबान ने लगभग 80 फीसदी स्वात पर अपना कब्जा जमा लिया. 16 फरवरी 2009 के इस अप्रत्याशित समझौते ने इस बात पर मुहर लगा दी कि पाकिस्तान के अंदर स्वात एक अलग दुनिया है, जो तालिबान और अलक़ायदा के आतंकियों के लिए जन्नत बन चुकी है. तालिबान से हुए पाकिस्तान सरकार के क़रार की नींव अमेरिकी राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा की नीतियों में है. अपनी अफ़ग़ान-पाकिस्तान नीति के तहत बराक ओबामा मानते हैं कि वह तालिबान और अलक़ायदा के उदारवादी आतंकवादियों से संवाद करेंगे. जाहिर है, उनकी सोच में ऐसे आतंकवादी मौजूद हैं, जिन्हें उदारवादी कहा जा सकता है. इसी तर्ज पर पाकिस्तान ने अपनी धरती पर जड़ें जमा चुके आतंकवाद में भी अपने उदारवादी आतंकवादियों की पहचान कर ली है, संवाद कर लिया है और क़रार भी कर लिया है.

इस क़रार से अमेरिका सकते में है. कहीं उसकी नीति उसी पर भारी न पड़ जाए. पाकिस्तान के उदारवादी आतंकवादी कौन हैं, उनका अफ़ग़ानिस्तान के कट्टर आतंकियों से क्या रिश्ता है और पाकिस्तान सरकार से हुए स्वात क़रार का अफ़ग़ानिस्तान में चल रहे आतंक के ख़िलाफ़ अमेरिकी युद्ध पर क्या असर पड़ेगा? ये सवाल अहम हो गए हैं, और इनके जवाब खोजे जा रहे हैं.

अफ़ग़ानिस्तान-पाकिस्तान सीमा पर मौजूद नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस के एक-तिहाई इलाक़ों पर तालिबानी हुकूमत है. इसके साथ ही मलाकंड, शांगला, बूनेर, दीर, चित्राल और कोहिस्तान भी तालिबान की गिरफ्त में है. शरीयत अदालतें तालिबान की निगरानी में चल रही है. पाकिस्तानी दहशतगर्दों के साथ-साथ अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिकी दबाव के चलते बड़ी संख्या में आतंकवादी यहां मौजूद हैं. आतंक के ख़िलाफ़ इस युद्ध में अमेरिका के लिए पाकिस्तान की अहमियत पर सवाल खड़ा हो चुका है. ऐसे में अमेरिका को स्वात इलाक़े से नई चुनौतियों का भी सामना करना पड़ेगा. अमेरिका को इस बात से भी ख़तरा महसूस हो रहा है कि कहीं पाकिस्तान के ये उदारवादी आतंकी अफ़ग़ानिस्तान में उसकी मुहिम को विफल करने की कोशिश न करें.

भारत से परमाणु क़रार के बाद और अमेरिका के नए राष्ट्रपति के रुख़ को देखते हुए पाकिस्तान को इस बात का भय है कि अमेरिकी नीति अब भारत के पक्ष में बैठती दिख रही है. हाल के बयानों से भी यह साफ है कि अमेरिकी प्रशासन चाहता है कि भारत, पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान में जारी आतंक के युद्ध में एक अहम और सक्रिय भूमिका अदा करे. क्षेत्र में भारत की भौगोलिक अहमियत भी अमेरिकी नीति को मुनाफे की लग रही है, जिसके चलते पाकिस्तान को अब महसूस हो रहा है कि वह अमेरिका के साथ ज़्यादा दिनों तक राग नहीं मिला सकता और पाकिस्तान की ज़मीनी हक़ीक़त उसे ऐसा करने पर रोक रही है. मौजूदा हालात में उसे यह भी अहसास है कि अमेरिका के उलट अपनी नीति रखने पर वह इस्लामिक देशों के नेतृत्व का भी मौक़ा पा सकता है. ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिका के ख़िलाफ़ पाकिस्तानी तालिबान की आवाज़ बुलंद कर उसे सहानभूति के साथ-साथ आर्थिक मदद भी मिल सकती है.

वहीं, स्वात में मौजूद तालिबान और अलक़ायदा के आतंकियों को वह अपने राष्ट्रीय हित और दुनियाभर में आतंक को बढ़ावा देने में भी इस्तेमाल कर सकता है, जिसमें उसके लिए सबसे अहम कश्मीर का मुद्दा है. आनेवाले दिनों में पाकिस्तान से कश्मीर और भारत के अन्य इलाक़ों में आतंकी हमले हो सकते हैं ताकि ठंडा पड़ चुका कश्मीर मसला एक बार फिर से सुर्खियों में आ सके.

अब देखना यह है कि पाकिस्तान की अमेरिका के 'अफपाक' नीति को जवाब देने की यह कोशिश कितनी कारगर होती है. क्या इस सीधी चुनौती से पाकिस्तान अपना अस्तित्व बचा पाएगा और वापस अमेरिका के लिए प्रथमिकता बन पाएगा? या फिर उसे अमेरिकी कहर का सामना करना पड़ेगा?

आतंक के चेहरे

फजलुल्लाह

रेडियो मुल्ला के नाम से मशहूर मौलाना क़ाज़ी फजलुल्लाह तहरीक-ए-नफज़-ए-शरीयत-ए-मोहम्मदी का सबसे शातिर और अहम खिलाड़ी है. सूफी मोहम्मद का दामाद होने के कारण भी इलाक़े के आतंकियों और आतंकी गतिविधियों पर फजलुल्लाह की खास पकड़ है. फजलुल्लाह ने स्वात इलाक़े से तालिबान के एफएम रेडियो का प्रसारण कर सुर्खियां बटोरी थीं. इसी के माध्यम से परवेज़ मुशर्रफ के काल में फजलुल्लाह ने स्वात के क़रीब 56 गांवों में शरीयत अदालत की नींव रख दी थी और पाकिस्तान सरकार को इलाक़ा बदर कर दिया था.

पाकिस्तान में चुनाव घोषित होने के बाद जहां परवेज़ मुशर्रफ से उसके रिश्ते बिगड़ चुके थे, वहीं बेनज़ीर भुट्टो की हत्या को अंजाम देने में उसका नाम बैतुल्लाह मेहसूद के साथ लिया जाने लगा. लेकिन आईएसआई और पाकिस्तानी सेना में उसकी पकड़ के चलते पाकिस्तान सरकार ने केवल बैतुल्लाह मसूद पर हत्या का शक जाहिर किया और फजलुल्लाह को मामले से बरी कर दिया. फरवरी 2009 को हुए सरकार और पाकिस्तानी तालिबान के बीच समझौते में फजलुल्लाह ने शिरकत की.

सूफी मोहम्मद

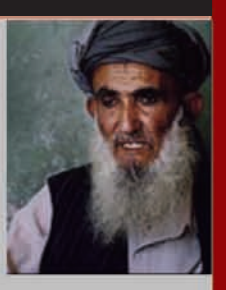

मौलाना सूफी मोहम्मद ने तहरीक-ए-नफ़ज़-ए-शरीयत-ए-मोहम्मदी नामक संस्था की 1992 में शुरुआत की. इसका मक़सद पाकिस्तान और खासतौर पर नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर में शरीयत लागू करने की वक़ालत और कोशिश करना था. 2002 में तत्कालीन राष्ट्रपति परवेज़ मुशर्रफ ने संस्था को आतंकी संगठन घोषित कर दिया था, जिसके बाद सूफी मोहम्मद को हिरासत में ले लिया गया था. हालांकि 2008 में पाकिस्तान सरकार के साथ हुए एक समझौते के तहत सूफी मोहम्मद को रिहा कर दिया गया था. फरवरी 2009 में पीपीपी की सरकार और पाकिस्तानी तालिबान के बीच सूफी मोहम्मद ने ही मध्यस्थ का काम किया था. इसके बाद पाकिस्तान सरकार स्वात इलाक़े में शरीयत लागू करने पर तैयार हो गई और हिरासत से कई तालिबानी लड़ाकों को रिहा करने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी. सूफी मोहम्मद इस समझौते में निर्णायक इसलिए भी साबित हुए. इसलिए कि उनकी बेटी का निक़ाह स्वात इलाके के तालिबानी संगठन के मुखिया फजलुल्लाह से हुआ है.

जंगलों पर भी अपना कब्जा जमा चुके हैं. पहले से ही स्वात के जंगल विलुप्त होने के कगार पर हैं. अब तालिबान के संरक्षण में बेशक़ीमती लकड़ियां काटी जा रही हैं और डी-कंपनी के जरिए इसे विदेशी बाज़ारों तक पहुंचा कर मोटी रक़म बनाई जा रही है. इसके साथ ही अंतरराष्ट्रीय ड्रग माफिया भी डी कंपनी के जरिए इस इलाक़े से हेरोइन की तस्करी में लगा है. डी कंपनी पाकिस्तान में फैले अपने नेटवर्क के जरिए यूरोपीय बाज़ार में हेरोइन और दक्षिण अफ्रीका में मैंड्रैक्स की सप्लाई कर रहा है. अंतरराष्ट्रीय ड्रग माफिया पर दुनियाभर में छप रही ख़बरों में यहां तक लिखा जा रहा है कि मादक पदार्थों की तस्करी की गारंटी अगर आईएसआई दे डाले तो व्यापार मुनाफे का होता है. दक्षिण एशिया से

इस्लामाबाद से महज 100 मील की दूरी पर स्वात घाटी कभी अंतरराष्ट्रीय पर्यटन का गढ़ हुआ करती थी. इसे पाकिस्तान की जन्नत के नाम से भी जाना जाता था.

अब पेंटागन में भी सवाल उठने लगे हैं. स्वात को तालिबान के अधीन करने और वहां शरीयत लागू करने की इजाज़त देना जहां धर्म और राजनीति के घालमेल को उजागर करता है, वहीं इस चेहरे के पीछे की हक़ीक़त, मुनाफाखोरी और तस्करी को भी दिखा देता है. ऐसे में स्वात के नागरिकों का धर्म, समाज और सरकार पर आस्था रखना तो दूर की बात है, उनके लिए अपने जीवन के बुनियादी और मानव अधिकारों को सहेज पाना ही सबसे बड़ी चुनौती है. नागरिकों का जब जीवन ही ख़तरे में हो, तो अधिकारों की बात ही क्या करें.

rahul.chauthiduniya@gmail.com

मतदाताओं में अलख जगाने की कोशिश

सनातन संत-सूफी यात्रा

दिल्ली के प्रेस क्लब में पत्रकारों से मुखातिब सनातन संत और सूफी

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

देश भर में आम चुनाव का माहौल है. कई पार्टियों के नेता ज़हर बुझी ज़ुबान से देश के सांप्रदायिक सदभाव और सौहार्द को बिगाड़ने की कोशिश कर रहे हैं. ऐसे माहौल में शांति और भाईचारे का संदेश देने के लिए देश भर के साधु-संत और सूफी दरवेश पूरे देश में घूम कर जनता को संबोधित कर चुके हैं.

दिल्ली, भोपाल, हैदराबाद, वाराणसी, पटना और रांची के सफल दौरों के बाद प्रेम और शांति का संदेश लिए संतों-दरवेशों का यह दल बेंगलुरु, मुंबई, इलाहाबाद, अहमदाबाद, लखनऊ और जयपुर भी गया. संतों और दरवेशों के इस दल से कुछ स्वार्थी तत्व बुरी तरह घबरा गए हैं. उनकी मजाल यहां तक हो गई है कि वाराणसी में प्रेस कांफ्रेंस के बाद रात के दो बजे उन्होंने संतों के ठहरने की जगह पर लगभग 50 गुंडों को भेजा. हालांकि, इससे संतों और दरवेशों को कोई फर्क नहीं पड़ा है. उनका कहना है कि इससे उनका इरादा और मज़बूत हुआ है और वे ऐसे तत्वों को बेनक़ाब कर के ही रहेंगे. पटना में देश भर के साधु-संतों और सूफी दरवेशों ने प्रेस कांफ्रेंस कर जनता से कुछ ऐसे शब्दों में अपील की, 'उन राजनेताओं से सावधान, जो सांप्रदायिक और ज़हरीले भाषण देकर देश की शांति और सौहार्द को बिगाड़ते हैं. वोट किसी भी पार्टी, किसी भी प्रत्याशी को दें, लेकिन कम-अज़-कम उनको तो बिल्कुल ही न दें, जो सांप्रदायिक आधार पर देश को बांटने की कोशिश करते हैं. सांप्रदायिक ताक़तों को चुनाव में हराएं.' देश के कोने-कोने से इकट्ठा हुए कई संतों, साधुओं और सूफी दरवेशों ने एक साथ आकर भाईचारे और शांति का संदेश दिया.

वे पूरे भारत का दौरा कर रहे हैं और जनता को संबोधित कर सांप्रदायिक ताक़तों और उन नेताओं को हराने का संदेश दे रहे हैं, जो घृणा और ज़हरीले भाषणों के जरिए देश का वातावरण बिगाड़ रहे हैं. ऐसे नेता समाज के लिए ख़तरनाक हैं. संतों ने कहा कि अपने अधिकार का उपयोग करें और उनको ही चुनें, जो हमें शांति और तरक्की का रास्ता दिखा सकें. शहर में प्रेस कांफ्रेंस को संबोधित करते हुए श्री राम जन्मभूमि मंदिर निर्माण न्यास, अयोध्या के अध्यक्ष महंत जनमेजय शरणजी महाराज और वर्ल्ड सूफी काउंसिल, अज़मेरशरीफ़ के अध्यक्ष सूफी मोहम्मद गिलानी कत्तान ने कहा कि जो भी सनातन धर्म और इस्लाम की विकृत व्याख्या कर देश के सांप्रदायिक सौहार्द को बिगाड़ना चाहते हैं, वे पूरी तरह ग़लत हैं.

सहिष्णुता, भाईचारा और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा ही भारतवर्ष का मूल तत्व है. कुछ शैतानी ताक़तें अपने स्वार्थ को पूरा करना चाहती हैं, लेकिन इसे किसी भी क़ीमत पर बर्दाश्त नहीं किया जाएगा. इसी को रोकने के लिए कई सूफी, महंत, और मठों के कर्ता-धर्ता इस यात्रा में शिरकत कर रहे हैं. अवंतिका पीठाधीश्वर के जगतगुरु स्वामी प्रेमानंदजी महाराज (अवंतिकापुरी, मध्यप्रदेश), सैयद हाजी मुहम्मद अब्दुल्ला (सूफी लाल मुहम्मद सूफी दरगाह), राउरकेला, उड़ीसा, महंत श्री गणेशाचार्य जी महाराज (डिवाइन श्रीराम इंटरनेशनल, हरिद्वार), सैयद मुहम्मद ताहिर (शेख हारुन रशीद दरगाह, वडोदरा, गुजरात), स्वामी राम टहल जी महाराज, (जनकपुर धाम, पीठाधीश्वर), सैयद मुहम्मद सदातुल्ला (दरगाह, सैयद यासीन शाह बुखारी, हैदराबाद), महंत लक्ष्मणदास जी महाराज, (स्वामी हरिदास आश्रम, रायबरेली) और स्वामी शिवरतन शरणजी महाराज, (ब्रह्मपीठ, पुष्कर, अजमेर) ने प्रेस कांफ्रेंस में हिस्सा लिया. पटना के बाद अब वे हिंदुस्तान के कई और शहरों जैसे रांची, गुवाहाटी, बेंगलुरु, मुंबई, इलाहाबाद, अयोध्या, लखनऊ, अहमदाबाद और जयपुर में अपना यही संदेश दिया.

उनका सीधा संकेत यह है कि किसी भी पार्टी को वोट दें, पर ऐसे किसी दल को अपना समर्थन नहीं दें, जो इस देश के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने को नहीं समझते हों. उनको अपना वोट नहीं दें, जिनके पास विकास का कोई एजेंडा नहीं है, बल्कि केवल देश के वातावरण को सांप्रदायिक बनाना चाहते हैं. आज देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती युवाओं के भविष्य को बचाने की है. इसीलिए हम संत और सूफी सड़कों पर उतर कर पूरे देश भर में अपना संदेश दे रहे हैं.

सहिष्णुता, भाईचारा और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा ही भारतवर्ष का मूल तत्व है. कुछ शैतानी ताक़तें अपने स्वार्थ को पूरा करना चाहती हैं, लेकिन इसे किसी भी क़ीमत पर बर्दाश्त नहीं किया जाएगा. इसी को रोकने के लिए कई सूफी, महंत, और मठों के कर्ता-धर्ता इस यात्रा में शिरक़त कर रहे हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

हिंदू होने का धर्म

सनातन धर्म को मानने वाला कौन है, या किसको हम सनातनी कह सकते हैं. इसकी कोई आसान सी परिभाषा देना बहुत कठिन है. कोई कह सकता है कि वेदों पर यक़ीन करनेवाले या उनको मानने वाले को सनातनी कहते हैं, पर यह होगा तो अर्धसत्य ही न. वजह यह कि वेदों को मानने वाला अगर सनातनी है, तो वेदांत की घोषणा करने वाला भी सनातनी ही है. साकार ब्रह्म को पूजने वाला अगर सनातनी है, तो निर्गुण की उपासना करने वाला भी सनातनी ही है. तथाकथित हिंदू (सनातन) ग्रंथों, जैसे वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत और गीता इत्यादि को मानने वाला अगर सनातनी है, तो बिल्कुल अराजक और नास्तिक भी सनातनी. सवाल फिर से यह उठता है कि सनातनी आख़िर है कौन. इसका जवाब आसान इसलिए नहीं है कि सनातनी बनने के लिए आपको कुछ करना नहीं पड़ता. आप जन्मनी सनातनी हो सकते हैं, किसी कर्मकांड के चलते नहीं.

जैसे ईसाई होने के लिए बपतिस्मा कराना होता है, मुसलमान बनने के लिए भी कुछ निर्धारित काम जैसे, खतना कराना या कलमा पढ़ना अनिवार्य होता है, वैसा कोई भी निर्धारित कर्म सनातनी होने के लिए नहीं है.

इसकी सबसे बड़ी वजह तो यह है कि सनातन धर्म में हठधर्मिता नहीं है. पारंपरिक तौर पर भी ऋषियों ने यही कहा है कि सत्य तो एक ही है, हां उसका दर्शन या उसकी व्याख्या लोग अपने-अपने तरीक़े से करते हैं, *एकं सत, विप्रा बहुधा वदंति.* तो, सनातन धर्म में हमेशा ही वाद-विवाद और प्रतिवाद के लिए जगह बनी हुई है. इस मसले पर पिछले अंकों में भी हमने उदाहरण सहित काफी कुछ लिखा है. यही वजह है कि एक ही परिवार में सनातन धर्म के कई संप्रदायों या शाखाओं को मानने वाले भी हो सकते हैं. पिता हठधर्मी मूर्तिपूजक हो सकता है, तो मां कुछ और हो सकती है, बेटा नास्तिक तो बेटी शैव या वैष्णव हो सकती है. हां, कुछ संस्कार या बंधन ऐसे हैं, जो सनातनियों में आमतौर पर प्रचलित हैं. इनको हम मोटे तौर पर सनातन धर्म की रूपरेखा मान सकते हैं.

व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसका श्राद्धकर्म किया जाता है और उसके शरीर को अग्नि के हवाले कर दिया जाता है. मिट्टी का शरीर मिट्टी में ही मिल जाता है.

उदाहरण के लिए, सनातन धर्म के सोलह संस्कार माने जाते हैं. ये सारे संस्कार किसी सनातनी के जन्म से लेकर मरण तक पूरे होते हैं. इनमें प्रमुख गर्भाधान (संतान प्राप्ति हेतु किया जाने वाला संस्कार, जिसमें केवल परिवार के सदस्य ही शामिल होते हैं), पुंसवन (गर्भ के तीसरे या चौथे महीने में संतान के स्वास्थ्य हेतु और वंश वृक्ष को बढ़ाने के लिए पूजा की जाती है और इसमें भी पारिवारिक जन ही शामिल होते हैं), सीमांतोन्नयन (गर्भ के सातवें मास में संपन्न किया जाता है, इसमें देवताओं की प्रार्थना की जाती है ताकि होने वाली संतान में अच्छे संस्कारों का प्रवेश हो. इसमें केवल महिलाएं हिस्सा लेती हैं), जातकर्म (संतान के जन्मोपरांत उसके स्वागत हेतु यह संस्कार किया जाता है), नामकरण (जन्म के 10 वें, 11 वें या 12 वें दिन नवजात को एक नाम दिया जाता है और उसी दिन से उसकी दुनिया में शुरुआत मानी जाती है), निष्क्रमण (इस संस्कार के तहत नवजात को पहली बार घर से बाहर निकाला जाता है और पंच महाभूत जैसे, हवा, पानी, अग्नि वगैरह से उसका परिचय करवाया जाता है. यह नवजात को सूर्य और अन्य प्राकृतिक तत्वों के प्रति सम्मान का भाव रखना भी सिखाता है), अन्नप्राशन (जन्म के छठे महीने में यह संस्कार होता है, जब नवजात पहली बार मां के दूध के अलावा ठोस आहार लेता है), चूड़ाकर्म (इस संस्कार में पहली बार संतान के बाल मुंडवाए जाते हैं), कर्णवेध (यह नवजात के जन्म के पांचवें या सातवें साल में किया जाता है, या फिर मुंडन के एक साल बाद. इसमें संतान के कानों को छेदा जाता है), उपनयन (यह संस्कार आम तौर पर द्विज जातियों में होता है, जन्म के आठवें से लेकर 11 वें साल तक होता है और इसके बाद वह जनेऊ धारण करता है), विद्यारंभ (इस संस्कार के बाद बालक या बालिका की पढ़ाई शुरू हो जाती है, इसके बाद ही वह वेदपाठी और शास्त्रों का अध्ययन शुरू करता या करती है), समावर्तन (यह संस्कार पढ़ाई ख़त्म होने और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पहले होता है. इसके बाद ही व्यक्ति शादी का अधिकारी बनता है), विवाह (यह गृहस्थ आश्रम की शुरुआत होती है, यहां व्यक्तिगत ज़िंदगी ख़त्म हो जाती है और पारिवारिक जीवन शुरू होता है), वानप्रस्थ (व्यक्ति जब अपनी सांसारिक ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाता है और संन्यास की तरफ उन्मुख होता है, तब उसे वानप्रस्थ कहते हैं), संन्यास (संन्यासी उसको कहते हैं, जो संसार को त्याग देता है और आध्यात्मिक जीवन की ओर लौ लगाता है, उस परम तत्व को जानने की चेष्टा करता है) और अंत्येष्टि (जीवन की तरह मृत्यु भी तय है, जब व्यक्ति मरने वाला होता है, तब उसके मुंह में गंगाजल और तुलसी का पत्ता रखते हैं) है. व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसका श्राद्धकर्म किया जाता है और उसके शरीर को अग्नि के हवाले कर दिया जाता है. मिट्टी का शरीर मिट्टी में ही मिल जाता है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

‘मेरे जीने के लिए सौ की उमर छोटी’

मुजफ्फरनगर (उत्तरप्रदेश) के मीरापुर में 12 जून, 1912 को जन्मे विष्णु प्रभाकर पिछले 10 अप्रैल को इस दुनिया से विदा हो गए. वे 98 साल के थे. विष्णु जी प्रेमचंद, यशपाल, जैनेंद्र, अज्ञेय के सहयात्री रहे, किंतु रचना के क्षेत्र में उनकी अपनी एक अलग पहचान बनी. उनकी लिखी शरतचंद्र की जीवनी ‘आवारा मसीहा’ से साहित्य में विष्णु जी की धूम मच गई. एक बार गणतंत्र दिवस पर आमंत्रित होने के बावजूद राष्ट्रपति भवन में प्रवेश न मिल पाने से खिन्न होकर उन्होंने पद्मभूषण लौटाने का एलान किया, तो वे अचानक कुछ दिनों सुर्खियों में रहे. पता चलने पर राष्ट्रपति ने जब उन्हें वाहन भेज कर बुलाया और अस-ावधानीवश हुई त्रुटि के लिए क्षमा मांगी, तो विष्णु जी ने अपनी नाराज़गी छोड़ दी.

मैं जब विष्णु प्रभाकर जी के घर महाराणा प्रताप एन्क्लेव पहुंचा, उस समय दोपहर के लगभग बारह बज रहे थे. बाहर धूप थोड़ी तीखी हो चली थी. मुख्य गेट खोल कर अंदर कमरे में दाखिल हुआ, तो वे पालथी मारे लैंप की रोशनी में चिट्ठियों का उत्तर लिख रहे थे. इतनी वय में भी वे अपने पाठकों का ख्याल रखते हैं, यह जानकर मन को संतोष हुआ. अपना परिचय देते हुए उनका कुशल क्षेम जानने की जिज्ञासा की, तो उन्होंने कहा, देखिए 93 बरस से ज्यादा का हो गया हूं. छिहत्तर बरस लिखते हो गए. अब यह सब कठिन होता जा रहा है. काम नहीं होता. अख़बार के अक्षर पढ़ने में कम आते हैं. उम्र का असर है यह. फिर भी आपके मन में पाठकों के पत्रों के प्रति उत्साह बचा हुआ है. उत्साह ही नहीं, कोई भी पत्र अनदेखा, अनुत्तरित न चला जाए, इस बात का कितना ख्याल रखते हैं आप? कहने लगे, अब क्या कहूं. नौजवान पाठक-पाठिकाएं दूर-दराज से पत्र लिखते हैं. कोई चीज पढ़ी, किसी रचना ने उन्हें छुआ, उद्वेलित किया तो वे पत्र लिखने बैठ जाते हैं. उन्हें क्या मालूम कि मुझसे अब उत्तर नहीं दिया जाता. हां, कोई उत्तर लिखने वाला होता है, तो बोल कर लिखाता भी हूं, पर इसके लिए कोई नियमित रूप से आता भी नहीं. देखिए, जब तक निभा पाता हूं, उत्तर देता रहूंगा. पर मैं चाहता हूं कि मेरे पाठक समझें कि अब मैं वृद्ध हो गया हूं – उनके पत्रों का उत्तर लिखने की सामर्थ्य मुझमें दिनोंदिन कम होती जा रही है. मैंने कहा भी कि वे चाहें, तो कुछ पत्रों के उत्तर बोल दें, तो मैं लिख देता हूं, पर उन्होंने शालीनता से मना कर दिया. ऐसी स्थिति में लेखन के सिरे को नियमित कैसे रख पाते हैं? मैंने जानना चाहा, तो उन्होंने कहा, भई, अब मुझे किसी यश की आकांक्षा तो है नहीं, धन की भी मुझे ज़्यादा दरकार नहीं है, सब कुछ तो मिल चुका- वही बहुत है. हां, मैं शांति से अपनी आत्मकथा का चौथा खंड पूरा कर सकूं, इतनी मोहलत और एकांत ईश्वर से और चाहता हूं. वैसे तो वह अभी ही उठा ले, तो मैं क्या कर सकता हूं.

इस जराजीर्ण स्वास्थ्य के चलते आत्मकथा का चौथा खंड कैसे पूरा करेंगे, पूछने पर वे संजीदा हो उठे. बोले, हफ्ते में तीन-चार दिन लोग भेंट करने, बातचीत करने के लिए आ जाते हैं- बातचीत से मैं थक जाता हूं. लिखने का समय ही नहीं मिल पाता. किसी गुमनाम-सी जगह चला जाऊं, तो शायद इसे पूरा कर सकूं. कहने लगे, अभी कल-परसों की ही बात है. टीवी वाले चार-पांच घंटे लगा कर गए. कोई मानदेय नहीं. समय की बरबादी अलग. टीवी वालों को तो अपने कार्यक्रम चलाने हैं, लोगों की सुविधा-असुविधा का ख्याल उन्हें कहां है. अख़बारों से भी लोग अक्सर आते रहते हैं. मुझे खुद उनकी स्क्रिप्ट भी सुधारनी पड़ती है, पर पारिश्रमिक के नाम पर कुछ भी नहीं. एक बार एक टीवी चैनल वाले मेरा इंटरव्यू ले गए और बदले में किसी मशहूर होटल के खाने का कूपन दे गए कि वहां जाने पर 50 प्रतिशत की रियायत मिलेगी. अब वहां जब हज़ार रुपये का बिल आएगा, तो पचास फ़ीसदी काट कर भी तो पांच सौ देने पड़ेंगे. इससे तो मैं दस दिन खा लूंगा. तो यह हाल है!

मोहन सिंह पैलेस का कॉफी हाउस कभी विष्णु प्रभाकर की मौजूदगी से गुलज़ार रहा करता था. पिछले लगभग पांच वर्षों से वे वहां नहीं आ-जा पाते. वे जब भी कॉफी हाउस में दिखते, लेखकों के वृत्त से घिरे होते. खद्दर का कुर्ता और गांधी टोपी दूर से ही दिख जाती. बतरस के धनी विष्णु जी उस दौर को याद कर भावुक हो उठते हैं. कभी लोहिया भी वहां आते थे, अन्य राजनेता भी.

चूंकि बातचीत का कोई निश्चित क्रम बन नहीं पा रहा था और वे बीच-बीच में पत्र भी लिखते जाते थे, मैंने चर्चा के सिरे को बढ़ाते हुए आवारा मसीहा की बात उठाई. कहने लगे, निश्चय ही मुझे साहित्य में यह कृति ज़िंदा रखेगी. मैंने पूछा, बंगाल में इसका रिस्पांस कैसा रहा, तो बोले कुछ बहुत अच्छा तो नहीं. बांग्ला अनुवाद भी इसका हुआ, पर उसमें बांग्लाभाषियों ने ज़्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाई. हालांकि वे भीतर ही भीतर इस काम को रिकग्नाइज तो करते ही हैं.

स्मरण

ब्यूरोक्रेसी और सरकारी तंत्र की बात छिड़ी तो उनके चेहरे पर आक्रोश और क्षोभ की लकीरें खिंच गईं. उन्हें अपने मकान को छलछद्म से अपने नाम करा लेने वाले किरायेदार को बेदखल कराने के लिए सरकारी अहलकारों तक की गई दौड़-धूप और बदले में मिलने वाले अपमान और झिड़कियों की याद ताज़ा हो उठी. बताते हैं, मकान बनाने पर कुछ दिनों के लिए उसे एक किरायेदार को रहने को दिया, तो उसने भीतर ही भीतर विष्णु जी की अवस्था, लाचारी का लाभ उठा कर तथा डीडीए वालों से सांठगांठ कर उसे अपने नाम करा लिया. सेलडीड और अन्य काग़ज़ात पर विष्णु जी के जाली हस्ताक्षर भी हो गए. डीडीए वालों से मिलने पर कोई सुनवाई नहीं हुई. डीडीए के अधिकारी यह मानने को तैयार ही नहीं हुए कि इसमें कोई जालसाज़ी हुई है, क्योंकि ये लोग पैसे ले चुके थे. यह मकान उन्होंने सस्ती के ज़माने में चार-पांच लाख की लागत में बनवाया था. आज इसकी क़ीमत कई लाख होगी. विष्णु जी और उनके लड़के ने मदद के लिए बहुतों से संपर्क किया, पर किसी ने ध्यान न दिया. अंततः पुलिस महकमे का एक इंस्पेक्टर काम आया. साहित्यिक रुचियों का होने के कारण उसने इस काम में दिलचस्पी ली, तब कहीं जाकर मकान खाली हो पाया. विष्णु जी कहते हैं, सभी सरकारी मशीनरी बिकी हुई है – सभी स्तर के कर्मचारियों के पैसे बंधे हैं.

इन दिनों जब से पद्मभूषण लौटाने का प्रसंग चर्चा में आया, उन्हें कुछ व्यक्तियों के अभिनंदक पत्र भी मिले. पद्मभूषण उन्हें भाजपा शासनकाल में मिला, जिस कारण ये लोग आरोप लगाते हैं कि उन्होंने यह पुरस्कार भाजपा से मैनेज किया है, जबकि विष्णु जी कहते हैं कि उनका नाम तो साहित्य अकादमी से प्रस्तावित हुआ था और सांप्रदायिकता के मुद्दे पर वे अपने को भाजपा का विरोधी मानते हैं. यह और बात है कि भाजपा के भी शीर्ष नेताओं में अटल जी से उनके निकट के संबंध हैं. विष्णुकांत जी से भी थे. वे ग़ुस्से से कहते हैं, वैसे भी इस तमगे की बाज़ार में कोई क़ीमत तो है नहीं. मुझे क्या मिलने वाला है इससे? जो मिलना था, बहुत मिल चुका. अब मुझे किसी भी चीज की स्पृहा नहीं है. ऐसे अलंकरण से कहीं ज़्यादा संतोषदायी बात मेरे लिए यह है कि मेरा लेखन चलता रहे. मैंने कहा कि कुछ लोग तो अपने नाम के पीछे पद्मश्री-पद्मविभूषण लगाने में गौरव समझते हैं, तो उन्होंने कहा, वे लोग शायद नहीं जानते कि ऐसा करना जुर्म है. यह तो महज अलंकरण है, नाम और उपाधि का हिस्सा नहीं है. इस बीच उनकी पुत्रवधू चाय रख गई थीं. उन्होंने मेरे साथ चाय पी और बिस्कुट भी लिया और पुनः पत्रों को पढ़ने और उनके उत्तर देने में दत्तचित्त हो उठे थे. मैंने कैमरे से उनकी फोटो लेने की इजाज़त चाही, तो उन्होंने सिर उठाया. दो-तीन स्नैप के बाद वे फिर ध्यानमग्न हो गए. दोपहर के डेढ़ बज चुके थे. सुई दो की ओर अग्रसर थी. उनके स्नान व भोजन का समय हो चुका था. मैंने विदा ली.

(विष्णु जी के साथ ओम निश्चल की यह मुलाकात चार साल पहले हुई थी)

ओम निश्चल
feedback.chauthiduniya@gmail.com

लेखकों के मरने का इंतज़ार करते लेखक संगठन!

अनंत विजय

पिछले कुछ वर्षों से लेखकों की सामाजिक भूमिका लगभग ख़त्म हो गई है. कहीं से भी यह लगता ही नहीं है कि लेखकों का समाज से कोई जुड़ाव भी है. किसी भी बड़े सामाजिक प्रश्न पर इनकी एकजुटता नज़र नहीं आती है. वे छोटे-छोटे गुटों में बनाई अपनी ही दुनिया में संतुष्ट नज़र आते हैं, जबकि साहित्य और संस्कृति के सामने संकट गहराता जा रहा है. लेखकों की सामाजिक सक्रियता को लेकर लेखक संगठनों की स्थापना की गई थी. कहने को तो आज हिंदी में तीन लेखक संगठन हैं और ये तीनों अलग-अलग कम्युनिस्ट पार्टियों से संबद्ध हैं. प्रगतिशील लेखक संघ सीपीआई से, जनवादी लेखक संघ सीपीएम से और जन संस्कृति मंच सीपीआई एमएल (लिबरेशन) से. लेकिन ये संगठन इन पार्टियों के पिछलग्गू ही साबित हो रहे हैं. जब सन 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी, तो दो दशकों तक इसने सभी भारतीय भाषाओं के लेखकों को जोड़ कर गंभीरता से काम किया, लेकिन समय बीतने के साथ ये संगठन कमज़ोर होता गया और आज तो हालत यह है कि कुछ शहरों को छोड़ दें, तो ये लगभग मृतप्राय है. यही हाल जलेस और जसम का भी है. अब तो यह तक पता नहीं चलता है कि इनके अध्यक्ष और सचिव कौन हैं. इन संगठनों का पता तब चलता है, जब किसी लेखक की मृत्यु होती है. इसके बाद लेखक संगठन एक शोकसभा का आयोजन करते हैं और उसमें मर्सिया पढ़ कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं. यह सही और दुखद है कि लेखक लोग या तो किसी शोकसभा में मिलते हैं या पुस्तक विमोचन के अवसर पर. मुद्दों को लेकर लेखकों ने आपस में मिलना बंद कर दिया है.

दूसरी सबसे शर्मनाक बात यह है कि इन लेखक संगठनों को किसी लेखक के मरने के बाद ही उसकी महत्ता समझ में आती है. लेखक के जीवित रहते ये संगठन लेखकों की रचनाओं पर कुछ भी करने से कतराते रहते हैं, लेकिन उनके मरते ही उसे महान तथा उसकी रचनाओं को बेहद अहम बताने लग जाते हैं. इससे लगता तो यही है कि ये लेखक संगठन लेखकों के मरने की प्रतीक्षा कर रहा होता है. पिछले दिनों हिंदी के कवि सुदीप बनर्जी का निधन हुआ और तमाम संगठनों के बीच उन्हें महान साबित करने की होड़ लग गई, लेकिन मुझे नहीं याद कि उनके जीवित रहते किसी भी संगठन ने कोई महत्वपूर्ण कार्यक्रम सुदीप बनर्जी पर आयोजित किया.

कई साल पहले हिंदी के एक वरिष्ठकवि मंगलेश डबराल ने एक बातचीत में कहा था कि लेखक संगठन लेखकों के यूनियन नहीं हैं, जो कॉपीराइट आदि के मुद्दे पर संघर्ष करें. उनका मानना था कि ये वैचारिक संगठन हैं, जिनका काम साहित्य की दुनिया में वैचारिक संवेदना का प्रचार करना है. अगर मंगलेश की बातों को मान भी लिया जाए, तो सवाल यह उठता है कि वैचारिक संवेदना के प्रचार के लिए भी लेखक संगठन क्या कर रहे हैं? जवाब शायद ही मिल पाए. लेकिन इन लेखक संगठनों से जुड़े लेखक की रचनाओं पर अगर किसी आलोचक या समीक्षक ने प्रतिकूल टिप्पणी कर दी, तो पूरा का पूरा संगठन उस पर टूट पड़ता है. कुछ दिनों पहले पटना से निकलने वाली एक पत्रिका में जसम से जुड़े साहित्य अकादमी प्राप्त एक कवि की कविताओं पर संपादक ने टिप्पणी क्या कर दी, मानो भूचाल आ गया. जन संस्कृति मंच से जुड़े लेखकों ने संपादक के ख़िलाफ़ हल्ला बोल दिया. तो जो लोग संगठन चला रहे हैं, वो एक सिंडीकेट की तरह ऑपरेट करते हैं और अपने विरोधियों को ठिकाने लगाने के लिए सक्रिय हो जाते हैं. आज ज़रूरत इन लेखक संगठनों की भूमिका पर पुनर्विचार की है. इन संगठनों की निष्क्रियता के पीछे वामपंथी राजनीति की हिम्मतपरस्ती और अवसरवादिता की राजनीति है. लेखकों के बीच भी पद और पुरस्कार पाने की लोलुपता बढ़ती जा रही है. वैचारिकता पर अवसरवादिता हावी हो गई है. तमाम लेखक इस दंद-फंद में जुटे रहते हैं कि किस संगठन से जुड़ कर उन्हें लाभ हो सकता है और यह तय करते ही वे उन संगठनों से जुड़ कर साहित्यिक मठाधीशों का आशीर्वाद प्राप्त कर लेता है. सच तो यह है कि इन दिनों लेखक संगठनों से न तो कोई ऊर्जा प्राप्त कर पा रहे हैं और न ही कोई वैचारिक दिशा.

लेखक संगठनों का इतना बुरा हाल है कि वे अपने ही साथी लेखकों के हित के लिए कुछ भी नहीं कर पा रहा हैं. कॉपीराइट हिंदी में लेखकों के लिए आज एक बड़ा मुद्दा है और तमाम लेखक इसके शिकार हो रहे हैं. लगातार प्रकाशकों द्वारा लेखकों के शोषण की बात सामने आती रहती है, लेकिन आज तक लेखक संगठनों ने इस शोषण के ख़िलाफ़ कोई ठोस आवाज़ नहीं उठाई है. आंदोलन की बात तो दूर. इसके अलावा भी कई मुद्दे हैं, जिन पर लेखक संगठनों की ख़ामोशी चिंतनीय है.

दरअसल अब प्रगतिशील लेखक संघ, जनवादी लेखक संघ और जन संस्कृति मंच को आपसी भेदभाव भुला कर साथ आकर एक नया सांस्कृतिक और साझा मंच बनाना चाहिए और लेखकों का मर्सिया पढ़ना बंद कर उनके जीवित रहते ही उनको उनका देय दिलाने के लिए प्रयास करना चाहिए. तभी साहित्य का भी भला होगा और साहित्यकारों का भी. अन्यथा लेखक संघ अपने ही साथियों के मरने का इंतज़ार करनेवाला संगठन बन कर रह जाएगा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

हम अभी सूफी के बचपन की कहानी पढ़ रहे हैं कि कैसे सूफी ने तस्करी की राह देखी और कैसे उस राह पर वो चल पड़ा.

मुसलमान

आबिद सुरती

दोनों बदमाशों के लिए अब इज़्ज़त का सवाल पैदा हो गया. इक़बाल से घबरा कर पेंसिल वापस दे दें, तो उनकी धाक उठ जाए. उन्होंने लड़ लेने का फ़ैसला किया.

पहला वार इक़बाल ने किया और थोड़े फासले से गुज़रते हुए एक मास्टर ने उसे साफ देखा. तीनों लफंगों को इक़बाल सबक सिखाए, इसके पहले उसके शरीर पर सटासट छड़ी पड़ने लगी. वह स्तब्ध रह गया. तीनों लफंगों को छोड़ कर उसने पलट कर पीछे देखा. सामने संसार के गोले जैसे भूगोल के शिक्षक खड़े थे. स्कूल से छूट कर वह शाम को घर आया. उसके पहले उसकी शिक़ायत आ पहुंची थी. फिर भी हुसेन अली ने उसकी ओर देखा तक नहीं. उसे अजीब लगा. पप्पा कुछ बोलते क्यों नहीं? चुपचाप पलंग पर क्यों पड़े हैं? वह मन ही मन प्रश्नों के जंगल में भटक रहा था. इतने में गुलबानू डॉक्टर खीमाणी के साथ कमरे में दाख़िल हुई. इक़बाल एक कोने में खड़ा हो गया.

‘चिंता करने की ज़रूरत नहीं.’ हुसेन अली की जांच कर डॉक्टर ने कहा कि ‘लड़के को मेरे दवाख़ाने भेजिए. मैं दवाई तथा गोलियां लिख दूंगा.’

सप्ताह बाद डॉक्टर खीमाणी ने गुलबानू को विश्वास के साथ बताया, ‘देखिए बहन, आपके पति को डायबिटीज (मधुमेह) और रूमेटिज्म (गठिया) पहले से ही थे. यह हृदय रोग है. तेल, मीठा, मिर्च, चरबी तथा मसाले वाली तरकारियां सब बंद करनी होंगी.’ केमिस्ट की दुकान से ख़रीदने के लिए नई दवाइयां लिख देते हुए उन्होंने चेतावनी भी दी, ‘खाने में अब परहेज नहीं रखेंगी, तो इनकी तबीयत और भी ख़राब होगी.’

इक़बाल की उमर हृदय रोग का मतलब समझाने के लिए बहुत कम थी. फिर भी मां की आंखों में तैरते चिंता के बादल उसने देख लिए थे. रोग की गंभीरता का अंदाज़ उसे हो गया. उसके नन्हें मन पर इसका गहरा असर हुआ.

पिता का किसी और तरीक़े से वह सहायक नहीं हो सकता था, परंतु इतना वह ज़रूर कर सकता था. पिता का दिल न दुखे, इसका ध्यान रख सकता था. उसके पराक्रमों से पिता दुखी न हों, यह देखना उसका फ़र्ज़ था.

उसकी शरारतों की पाराशीशी का पारा नीचे आ गया. पिछले एक महीने से हुसेन अली बिस्तर पर थे. बेटे की हर हरक़त का वे चुपचाप निरीक्षण करते थे. इक़बाल में आया बदलाव उनसे छिपा न रहा.

पिछले कुछ महीनों से उन्होंने यह आशा छोड़ दी थी कि बेटा पढ़-लिख कर ग्रैजुएट होगा. अब इस आशा ने जैसे करवट ली थी. दूसरे महीने से हुसेन अली ने फिर से काम पर जाना शुरू किया.

हुसेन अली रहते थे डोंगरी मोहल्ले की मुंडागली में और उनकी नौकरी थी बांद्रा के लिंक बाज़ार में. यानी घर से चलकर सैंडहर्स्ट रोड स्टेशन पहुंचना, ट्रेन पकड़ कर उपनगर बांद्रा जाना, फिर स्टेशन से बाहर निकल कर दस मिनट का पैदल सफ़र.

इस हाड़मारी मेहनत से वह हांफ जाते, थक जाते, पर कोई दूसरा उपाय भी नहीं था. एक सपना साकार करना था. घर का चूल्हा भी जलता रहना था. किंतु उसी चूल्हे को उन्होंने ठंडा पाया. सुनहरा सपना भी टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरते देखा. लिंक बाज़ार स्टोर उन्हें घूमता हुआ नज़र आ रहा था. पैर के नीचे से ज़मीन खिसकती जा रही थी. वे चक्कर खाकर डिपार्टमेंट स्टोर के दरवाज़े में ही ढेर हो गए. दिल के दौरे का यह हलका-सा झटका था. धुंधले भविष्य की लाल बत्ती थी, फिर भी लिंक बाज़ार की नौकरी छोड़ देने से काम नहीं चलने वाला था. पर हुसेन अली को नौकरी से छुट्टी मिल गई.

इक़बाल खूब मन लगा कर पढ़ रहा था. जीवन में आगे बढ़ने के सारे लक्षण अभी से उस में दिखाई पड़ रहे थे. केवल पैसों की कमी के कारण उसकी तरक्की में रुकावट पैदा होगी, तो ख़ुदा भी उन्हें माफ़ नहीं करेंगे. इसी विचार ने हुसेन अली को एक नयी नौकरी तलाशने पर मजबूर कर दिया.

कुछ दिनों के परिश्रम के बाद ऑटोपार्ट्स की एक दुकान में उन्हें नौकरी मिली. दुकान क़रीब में थी, पर तनख़्वाह कम थी. संतोष सिर्फ इतना था कि किसी तरह गुज़ारा होता रहेगा. कम से कम एसएससी तक बेटे की पढ़ाई में बाधा नहीं आएगी.

यह नौकरी भी ज़्यादा दिन तक नहीं टिकी. नया मालिक स्वभाव का खटपटी निकला. छोटी-छोटी ग़लतियों पर भी बहुत डांट-डपट करता था. कभी-कभी बेवजह फटकारने से भी नहीं चूकता था. आख़िर हुसेन अली से सहा नहीं गया. उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया.

इक़बाल की फीस पहले नियमित भरी जाती थी, अब उसमें दो-दो, तीन-तीन महीनों की ढील होने लगी.

‘इक़बाल!’ एक दिन उसे उदास देख, अली ने पूछा, ‘क्या हुआ?’ इक़बाल ने उसके सामने देखा. यह वही अली था, जिसकी नाक घूंसा मार कर उसने फोड़ दी थी. (अली और उसके साथियों के साथ सुलह कर ली थी.)

‘कुछ नहीं’, अली के प्रश्न का उसने सही उत्तर नहीं दिया.

‘तुम्हारे चेहरे पर मक्खियां क्यों उड़ रही हैं?’

‘ईद सर पर आ रही है और पहनने के लिए नए कपड़े नहीं.’ बाक़ी का आधा जुमला उसने हवा में तैरता हुआ छोड़ दिया.

‘बस...?’ अली ने हंस कर कहा. फिर उसने उपाय भी सुझाया.

उन दिनों तस्करी के धंधे में पहल करते नौसिखुओं के लिए डॉक में लंगर डालते विदेशी जहाज़ों के डेक प्रयोग-भूमि के समान थे. जहाज़ से लड़के एकाध इंपोर्टेड घड़ी, सिगरेट की डिबिया, स्कॉच की बोतल या ट्रांजिस्टर रेडियो ख़रीद कर लाते थे और डोंगरी क्षेत्र के मारवाड़ियों को बेच देते थे.

धंधे की शुरुआत करने के लिए अली ने उसे पच्चीस रुपये का क़र्ज दिया. पर थोड़े दिन तक यह काम करने के बाद इक़बाल को लगा कि इसमें मुश्किलें ज़्यादा और आमदनी कम है. दूसरे, जहाज़ आज हैं, कल न भी हों. कभी-कभी तो पूरे सप्ताह एक भी जहाज़ बंदरगाह में लंगर न डालता.

उसने एक बार फिर अली की सलाह ली. अली ने नया धंधा सुझाया, ‘काम बिल्कुल आसान है.’ इक़बाल को उसने बताया, ‘तुम्हें बस एक जगह से बोतलें लेकर दूसरी जगह पहुंचानी हैं. एक बोतल पर तुम्हें एक रूपया मिलेगा. पांच बोतलों पर पांच और सौ बोतलों पर सौ रुपए.’

‘बोतलें किस चीज़ की हैं?’

‘दवाई की.’

सूफ़ी की ज़बानी मैं उसके बचपन और परवरिश के बारे में एक ध्यान होकर सुन रहा था. हम उसके बांद्रा के फ़्लैट के टेरेस पर बैठे थे. अचानक मुझे ख़याल आया, ‘दवाई माने क्या?’

वह कुछ उत्तर दे, इसके पहले उसकी पत्नी मासूमा मेरे लिए शरबत का गिलास लिए मुस्कुराती हुई आई. थोड़ी देर के लिए हमारे बीच ख़ामोशी छा गई.

सूफ़ी से मुलाकात के लिए मैंने सप्ताह का एक दिन तय किया है. हर गुरुवार की शाम को उसकी खुली छत पर हम कुर्सियां डाल कर बैठते हैं. सामान्यतः वह बोलता है, मैं सुनता हूं, नोट करता जाता हूं.

शरबत पीकर मैंने फिर बीच में पड़ी तिपाई पर गिलास रखा. सूफ़ी ने मेरे अंतिम प्रश्न के उत्तर से बात की शुरुआत की, ‘दवाई यानी कि इथाइल अल्कोहल, जिसका उपयोग सेंट आदि बनाने में होता है, पर अंडरवर्ल्ड में इसका उपयोग अलग ढंग से किया जाता है.’

‘किस तरह से?’

‘शराब या ब्रांडी बनाने में.’

‘उस समय आपकी उम्र कितनी थी?’

‘मैं छठी में पढ़ता था.’

मेरे लिए यह मुद्दा महत्वपूर्ण था. इसलिए उसे पिन-पॉइंट करते हुए मैंने कहा, ‘शायद ईद का अवसर बीच में न आया होता, तो आपकी ज़िंदगी ने अपना रुख भी न बदला होता.’

‘अपना मानसिक संतुलन खोकर मेरे पिता ने खाट पकड़ ली थी. उनके इलाज में मेरे चाचा मोहम्मद हुसेन की लगभग पूरी कमाई खर्च हो जाती थी.’

(अगले अंक में जारी)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

धूमिल होती न्याय की उम्मीद

पुलिस की गुंडागर्दी और सीबीआई की अंधेरगर्दी

शाहनवाज़ आलम

पिछले दिनों सीबीआई ने बहुत गुपचुप तरीक़े से एक ऐसी जांच पर फाइनल रिपोर्ट लगा दी, जिसके सार्वजनिक होने का इन्तज़ार लंबे समय से देश की जनता को था. यह जांच 9 मार्च 2001 को उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर जिले में कथित नक्सलियों के साथ पुलिस मुठभेड़ को लेकर थी, जिसमें 16 दलित और आदिवासी सरकारी गोली के शिकार हुए थे. जिस पर समाज के विभिन्न तबक़ों ने यहां तक कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी संदेह जाहिर किया था. लेकिन अब सीबीआई ने फाइनल रिपोर्ट लगाते हुए उन तमाम लोगों को क्लीन चिट दे दिया है, जो इस जनसंहार में शामिल थे और जिसे प्रदेश की तमाम सरकारें नक्सलवाद उन्मूलन अभियान के नाम पर अपनी अब तक की सबसे बड़ी उपलब्धि मानती हैं. बहरहाल सीबीआई की लीपापोती के बावजूद पीड़ित परिवार दुबारा न्याय का दरवाज़ा खटखटाने की तैयारी में है.

इस घटना में मारे गये शेषमणि की पत्नी राजकुमारी कहती हैं, 'जांच पर तो हम लोगन को पहिले से भरोसा नहीं था, लेकिन बहिन जी के सरकार में ई अंधेर होई, हमके उम्मीद ना रही.'

गौरतलब है कि राजनाथ सिंह की तत्कालीन सरकार, जो बसपा के बाहरी सहयोग से चल रही थी की ये 'उपलब्धि' शुरू से ही संदेहास्पद रही. जहां खूंखार नक्सली होने के नाम पर 12 वर्ष के एक बच्चे कल्लू की भी हत्या पुलिस ने की थी, वहीं पांच दिन बाद मिर्ज़ापुर कचहरी पर इस हत्याकांड के ख़िलाफ़ भाकपा माले द्वारा बुलाई गई आमसभा में सुरेश बियार नाम का वह नौजवान भी प्रकट हो गया, जिसे पुलिस मुठभेड़ में मारने का दावा कर चुकी थी. इस संदर्भ में पुलिस द्वारा दिए गए तमाम अंतर्विरोधी बयानों के कारण पुलिस खुद उलझ गई और भारी जनदबाव व विभिन्न मानवाधिकार संगठनों की पहल पर प्रदेश सरकार को सीबीआई जांच का आदेश देना पड़ा था.

बहरहाल, घटना के अगले साल (2002) में हुए विधानसभा चुनावो में बसपा की सरकार बनने के बाद इस 'मुठभेड़' में मारे गए दलितों और आदिवासियों के परिजनों में न्याय की उम्मीद और घटना की जांच फिर से सीबीआई को सौंप दी गई. लेकिन सपा सरकार में भी मामला वहीं का वहीं लटका रह गया. लेकिन अब पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में आई सर्वजन हिताय की सरकार में सीबीआई ने पूरी घटना पर पटाक्षेप करते हुए सभी आरोपियों को दोषमुक्त घोषित कर दिया.

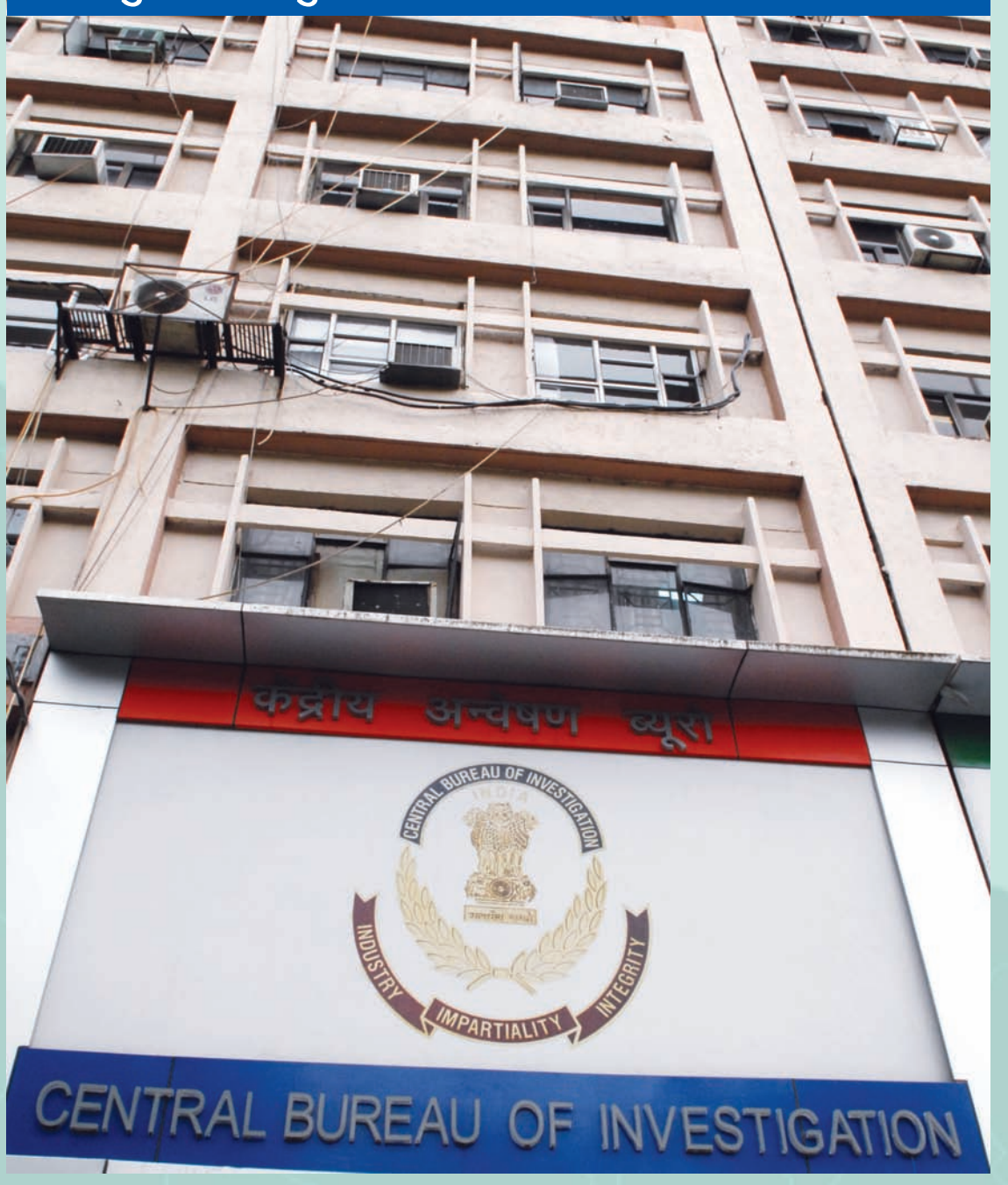

इस घटना की जांच में सक्रिय रहे पीपुल्स यूनियन फॉर ह्यूमन राइट्स (पीयूएचआर) के नेता शरद मेहरोत्रा कहते हैं, 'भवानीपुर फर्जी मुठभेड़ कांड को सिर्फ जातीय नरसंहार नहीं समझना चाहिए. अगर ऐसा होता तो जातिगत आधार पर बंटी राजनीति में दलित पैरोकार उन्हें न्याय जरूर दिलाते. क्योंकि घटना के दौरान बसपा की मदद से ही भाजपा की सरकार चल रही थी, तो वहीं बाद में खुद मायावती मुख्यमंत्री भी बनीं.'

शरद मेहरोत्रा आगे कहते हैं, 'यह दरअसल वर्गीय नरसंहार था, जिसे सरकार ने अपनी मशीनरी के मार्फत अंजाम दिया. जिसे पक्ष और विपक्ष दोनों का समर्थन था. शरद मेहरोत्रा की बात की तस्दीक मिर्ज़ापुर और सोनभद्र के सामाजिक-राजनीतिक हालात भी करते हैं.

सोनभद्र और मिर्ज़ापुर का पूरा क्षेत्र प्राकृतिक संपदा का धनी है. न केवल खनिज पदार्थों के लिए बल्कि खूबसूरत घाटियों, जलस्रोतों, वनों और पहाड़ियों के लिए भी यह क्षेत्र जाना जाता है. जहां आधुनिक उद्योगों, खासतौर पर पनबिजली उत्पादन के भी कई केंद्र हैं. बावजूद इसके स्थानीय आदिवासी और दलित पुराने और नए दोनों ही प्रकार के शोषण झेलने को अभिशप्त हैं. इस शोषण में राजनीतिक दल एजेंट के बतौर काम करते हैं. यही वजह है कि आदिवासियों और दलितों के एक छोटे तबक़े का रैडिकल वामपंथ की तरफ आकर्षण बढ़ा है. क्योंकि वही उन्हें इस सामंती और आधुनिक (विस्थापन और अधिग्रहण) शोषण को चुनौती देते दिखते हैं.

इस तरह यथास्थितिवाद को चुनौती देती इस राजनीति, जिसे सत्तातंत्र और मीडिया नक्सलवाद कहता है, का दमन सभी पार्टियों का एक साझा न्यूनतम कार्यक्रम बन जाता है. इस तरह नक्सल उन्मूलन इस क्षेत्र के आदिवासी और दलित समाज के लिए एक ऐसा दुश्चक्र बन गया है, जहां पुलिस को उनका फर्जी मुठभेड़ करने का खुला लाइसेंस मिल जाता है. वहीं दूसरी ओर भ्रष्ट प्रशासन को इस समस्या के उन्मूलन के नाम पर करोड़ों रुपयों के हेरफेर का बहाना भी मिल जाता है. ग़ौरतलब है कि इस मुठभेड़ के बाद नक्सलवाद के उन्मूलन के नाम पर तत्कालीन मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह के प्रस्ताव पर भाजपानीत राजग सरकार ने 1700 करोड़ रुपये का कर्मनाशा पैकेज दिया था. जबकि गरीबी और भुखमरी, जिसे सरकारें नक्सलवाद का मुख्य कारण मानती हैं, की समस्या से निपटने के लिए राजग सरकार ने पूरे उत्तर भारत के लिए सिफ 700 करोड़ रुपए दिये थे. इस पैकेज की बंदरबांट के बाद प्रशासन और पुलिस में और अधिक धनराशि के पैकेज प्राप्त करने का लालच बढ़ता गया, जिससे पुलिस वालों में फर्जी मुठभेड़ करने की ललक और आपसी होड़ भी बढ़ती गई.

इस क्षेत्र में सक्रिय भाकपा माले के युवा संगठन इंक़लाबी नौजवान सभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष मो सलीम बताते हैं, 'भवानीपुर कांड के बाद से इस क्षेत्र में अब तक लगभग 100 लोगों की पुलिस ने नक्सली होने के आरोप में हत्या की है. इनमें से बहुतों की तो पुलिस वास्तविक पहचान, यहां तक कि नाम भी नहीं बता पाई है'.

दरअसल शासन-प्रशासन इस पूरे क्षेत्र को सुनियोजित ढंग से नक्सली बेल्ट के बतौर प्रचारित करता रहा है. जबकि सच्चाई तो यह है कि पूरे क्षेत्र में सिर्फ बिहार और मध्यप्रदेश से सटे कुछ गांवों में ही माओवादी सक्रिय हैं, जो न तो चुनाव बहिष्कार की स्थिति में हैं और न ही उनका काडर फोर्स बढ़ रहा है कि वो राज्य मशीनरी को चुनौती दे सकें. ऐसी स्थिति में अगर पुलिस निरंतर मुठभेड़ करती है, तो उसको फर्जी होने का संदेह स्वाभाविक है. इन मुठभेड़ों के फर्जी होने का संदेह मारे गए अधिकतर लोगों की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि से भी होती है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि नक्सली के बहाने तंत्र चिन्हित करके उन किसानों, आदिवासियों को मार रहा है, जो तमाम तरह के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ किसी न किसी रूप में लड़ रहे हैं. राजकुमारी का पति शेषमणि हरिजन भी ऐसा ही युवक था, जो आईटीआई करने और ओबरा में अप्रेंटिस का काम करने के साथ ही सामंती शोषण के खिलाफ मुखर हो रहा था.

दरअसल, इस तरह की टारगेटेड हत्याओं का दौर किसान नेता गुलाब की हत्या के बाद से ही शुरू हो गई थी, जब 7 फरवरी 2001 को पुलिस ने जनवादी मोर्चा के इस लोकप्रिय नेता को नक्सली कहकर घर से उठाया और रॉबर्ट्सगंज से आठ किमी दूर चूर्क माइनर के पास मौत के घाट उतार दिया.

यहां यह जानना दिलचस्प होगा कि जिस गुलाब को पुलिस ने चुनाव बहिष्कार की लाइन पर अमल करने वाले एमसीसी का नेता बताया, वो ज़िला पंचायत चुनावों में पंचायत सदस्य के लिए चुनाव भी लड़ चुके थे और उन्हें 2400 वोट भी मिले थे. गुलाब के परिजनों के मुताबिक मारे जाने से पहले वो फर्जी मुक़दमों के ख़िलाफ़ उच्च न्यायालय जाने की तैयारी कर रहे थे. पीयूएचआर नेता शरद मेहरोत्रा कहते हैं, 'सामंतों के इशारे पर पुलिस ने गुलाब की हत्या करके किसान आंदोलन में लगे हुए हर एक कार्यकर्ता को चेतावनी दे दी थी'.

दरअसल, इस क्षेत्र में नक्सल उन्मूलन एक ऐसा हथियार बन गया है, जिसकी बदौलत ऊपर से लेकर नीचे तक शोषण और अपराध का एक पूरा तंत्र तो विकसित हुआ ही है, इसने सामंती शोषण को भी नए सिरे से मज़बूत किया है, जहां कोई भी दबंग किसी भी कमज़ोर को नक्सली बता कर पुलिस से मुठभेड़ करवा सकता है या उसकी ज़मीन जायदाद छीन सकता है. दिवंगत शेषमणि की पत्नी राजकुमारी, जो 30 रुपए रोज़ाना पर मज़दूरी करके किसी तरह अपना परिवार चला पाती हैं, की ज़मीन पर गिद्धदृष्टि डाले उसी गांव के दबंग रमेश कुंबी ने पुलिस से यह कह कर कि शेषमणि का 15 वर्षीय बेटा विमलेश भी नक्सली गतिविधियों में लिप्त है, उस पर बलात्कार का झूठा मुक़दमा लदवा दिया.जब शेषमणि के भतीजे रमाशंकर (15) ने इस पर थाना-कचहरी किया, तो उस पर भी डकैती का फर्जी मुक़दमा दर्ज करा दिया गया. जबकि फर्जी मुठभेड़ में लिप्त पाये गए पुलिस अफसर प्रमोट होकर डीआईजी तक हो गए हैं.

बहरहाल जब इस इलाक़े के 266 गांवों को सरकार ने नक्सल प्रभावित घोषित कर पुलिस को किसी को भी नक्सली बताकर हत्या करने की खुली छूट दे दी हो, ऐसे में सीबीआई की ये जांच रिपोर्ट इन वर्दीधारी हत्यारों के हौसले और बुलंद करेगी.

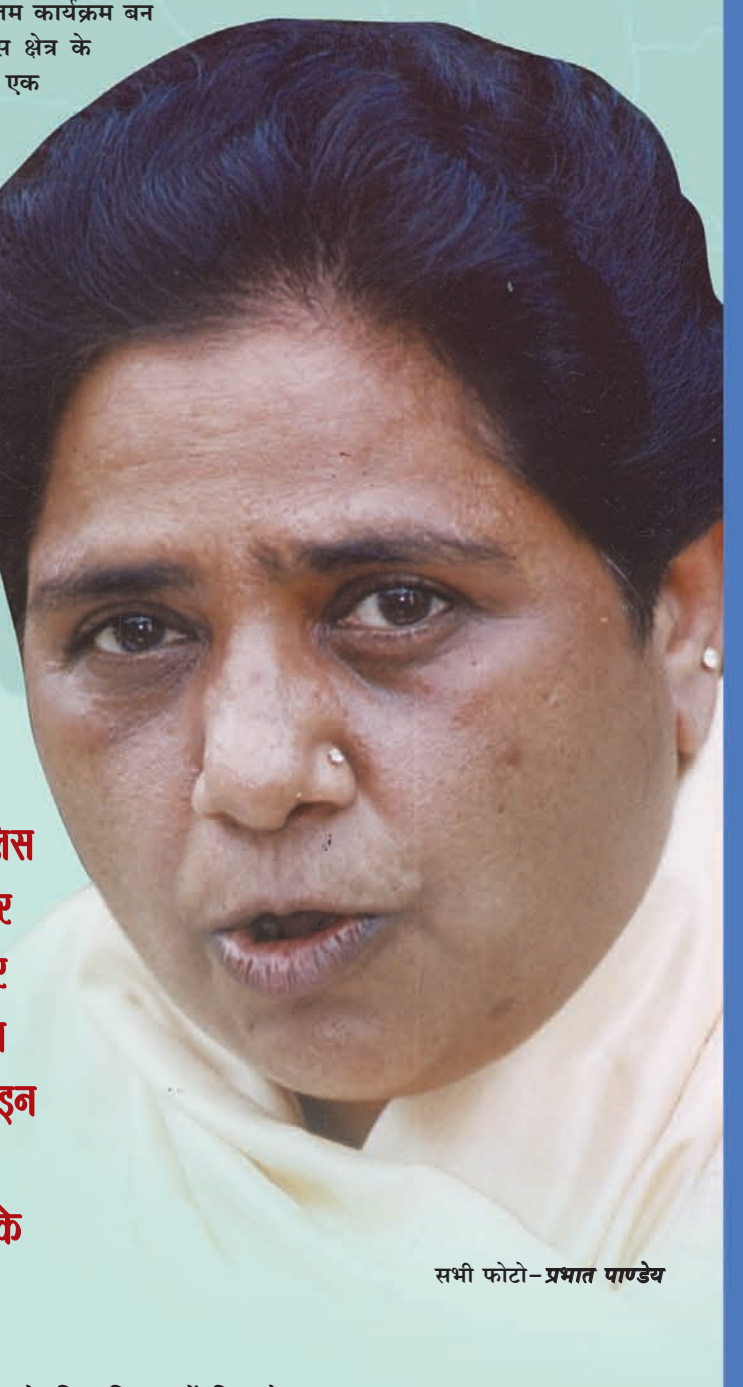

टारगेटेड हत्याओं का दौर किसान नेता गुलाब की हत्या के बाद से ही शुरू हो गई थी, जब 7 फरवरी 2001 को पुलिस ने जनवादी मोर्चा के इस लोकप्रिय नेता को नक्सली कहकर घर से उठाया और रॉबर्ट्सगंज से आठ किमी दूर चूर्क माइनर के पास मौत के घाट उतार दिया. यहां यह जानना दिलचस्प होगा कि जिस गुलाब को पुलिस ने चुनाव बहिष्कार की लाइन पर अमल करने वाले एमसीसी का नेता बताया, वो ज़िला पंचायत चुनावों में पंचायत सदस्य के लिए चुनाव भी लड़ चुके थे और उन्हें 2400 वोट भी मिले थे.

सभी फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

जगी. लेकिन मायावती के रवैये से यह जल्दी ही साफ हो गया कि इस ख़ूनी हमाम में मनुवादी भाजपा ही नहीं, दलितों की झंडाबरदार बसपा भी नंगी है. भाजपा के बाहरी सहयोग से सरकार चला रही मायावती ने सत्ता में आने पर सबसे पहला काम सीबीआई जांच को रोक कर सीबीसीआईडी जांच का आदेश देने का किया.

इस जांच का परिणाम वही हुआ, जिसकी उम्मीद थी. सारे अभियुक्तों को सरकार ने क्लीन चिट दे दी.

बहरहाल, बसपा का अंकगणित गड़बड़ाने और सपा की भाजपा के अप्रत्यक्ष सहयोग से 2003 में सरकार बनने के बाद एक बार फिर पीड़ित परिवारों के साथ न्याय की लुका-छिपी का खेल शुरू हुआ

feedback.chauthiduniya@gmail.com

राशिफल

(19 अप्रैल से 25 अप्रैल तक)

मेष
21 मार्च से 20 अप्रैल

इस हफ्ते आपकी रचनात्मकता में धार आ–एगी और आप अधिक केंद्रित होकर काम करेंगे. फलस्वरूप, आप अधिक संतुष्ट रहेंगे और कठिन परिस्थितिओं को भी नियंत्रण में रखेंगे. आप, जो मिल रहा है उससे संतुष्ट न होकर बेहतर परिणाम के लिए काम करते रहेंगे. लेकिन जिन्हें आप इस दौरान बढ़ावा देंगे उनसे मज़बूत प्रतिस्पर्धा के लिए भी तैयार रहिए. *क्या मैं कर सकता हूं* की सोच की बजाए *मुझे यह करना ही है* की सोच से अप्रत्याशित सफलता मिलेगी. इस तरह से आपको यह याद रहेगा कि आप कहां पहुंचना चाहते हैं और उसके लिए आपको क्या करना है. आप इस तरह अपनी नई स्थिति मज़बूत करने के साथ साथ बाधाओं को पार करने में सफल होंगे.

वृष
21 अप्रैल से 20 मई

आप इस सप्ताह नए विचारों से परिपूर्ण रहेंगे, कोई भी नई पहल करने की चाहत और बेहतरीन शुरूआत पर ध्यान देने की सोच अपने आप ही आपके अंदर पैदा होगी. क्योंकि आप अपने जन्म के समय में प्रवेश कर रहे हैं, ऐसे में आप उन परिस्थितिओं में भी आसानी से सफलता प्राप्त करेंगे जहां सिर्फ ऊर्जावान लोग ही सफल हो पाएंगे. इससे परिणाम होगा कि आप उस असंशय से बच पाएंगे जो आपकी सफलता में अवरोध पैदा कर सकता है. अपने काम के तरीके में बदलाव करें, नई मांगों और बाधाओं से निपटने के लिए अपनी दिनचर्या में बदलाव करें. साथ ही आपकी छठी इंद्रिय यह बता रही है कि यह समय नए अवसरों के मिलने और उनसे लाभ उठाने का है.

मिथुन
21 मई से 20 जून

आश्चर्यजनक रूप से इस सप्ताह पर्दे के पीछे का खेल आपके फायदा का ही है. आप आ रही नई सूचनाओं पर नज़र जमाए हुए हैं और इस तरह हर नई और ताज़ा गतिविधि से जुड़े हुए हैं. इसका असर यह है कि विकास आधारित प्रभाव मज़बूत होंगे और उससे आप के प्रस्तुतीकरण के अंदाज़ में बदलाव आएगा और आप मुक्त होकर नए सुधार कर सकेंगे. इसके प्रभाव से नए शुरु किए गए कार्यों में अप्रत्याशित सफलता प्राप्त होगी और ये कार्य भविष्य में आपकी स्थिति और लक्ष्यों की बेहतरी के लिए लाभकारी होंगे. यह आपकी क्षमता के पूरे इस्तेमाल और आपके काम करने के तरीके की सार्थकता से जुड़े सवालों को खत्म करने का उपयुक्त समय है.

कर्क
21 जून से 20 जुलाई

नए और पुराने को मिलाकर काम करने की आपकी कुशलता इस सप्ताह नए लाभ दिलाएगी. साथ ही, नए प्रभाव आपको और महत्वाकांक्षी बना रहे हैं. फलस्वरूप बिना किसी मदद के भी आप अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने की स्थिति में होंगे. अगर ये इच्छाएं किसी नए पारिवारिक उद्यम से जुड़ी हों तो यह और भी अच्छी बात है. इसके अलावा ऐसे मामलों पर जो लंबे समय से विचाराधीन थे, काम करने से आप व्यस्त रहेंगे. आप अपने संबंधों और नेटवर्क की वास्तविक स्थिति समझ रहे हैं जिससे आप को मिलने वाले अवसरों पर बेहतर असर पड़ेगा. यह आपको अपने लक्ष्यों तक पहुंचने की ऊर्जा और नई शक्ति मिलती रहेगी.

सिंह
21 जुलाई से 20 अगस्त

यह बड़ा सोचने का समय है. इस बात को स्वीकार कीजिए कि आप जितने महात्वाकांक्षी होंगे परिणाम उतने ही बेहतर होंगे. यह तो तय है कि सोचने और सपने देखने की तुलना में बड़े लक्ष्यों के लिए काम करना बहुत कठिन है, लेकिन असल में यह उम्मीद से अधिक आसान और आनंददायक साबित होगा. सितारों तक पहुंचना एक बड़ी उपलब्धि होगी लेकिन आप में से अधिकतर कई संशयों, नकारात्मक प्रभावों को दूर करने में सफल रहेंगे. सकारात्मक सोच की शक्ति, नए विचार और जरूरत पड़ने पर लीक पर चलने की आपकी क्षमता मिलकर अधिकतर स्थितिओं में आपको आशा से बेहतर लाभ दिलाएगीं. इस हफ्ते पूंजी जुटाना भी आसान रहेगा.

कन्या
21 अगस्त से 20

आप हमेशा *सरल और सीधे* की छवि में नहीं बने रहना चाहते, आप नई चुनौतियां तो स्वीकार कर रहे हैं लेकिन उन कार्यों से बच रहे हैं जहां आपका शोषण हो सकता है. आप अपनी छाया से बाहर आना चाहते हैं और उसके लिए पूरा ज़ोर लगाने को तैयार हैं. यह अज़ीब बात है कि आपकी यह स्पष्टवादिता ही आपके लिए नए दरवाजे खोल रही है. कुछ समय से आपके मन में जो इच्छाएं और सोच है वह अप्रत्याशित रूप से आपको मज़बूती देगा. जब आप यह समझ लेंगे कि आप परिणामों पर नियंत्रण रखने में सक्षम हैं तो आप नई चुनौतियों की ओर आकर्षित होंगे. व्यावसायिक मामलों में निवेश से पहले बाज़ार का अध्ययन बहुत फायदेमंद होगा.

तुला
21 सितंबर से 20

यह सप्ताह आपके लिए बहुत बड़ा फायदा लेकर आया है अगर आप अपने दिमाग की शक्ति और बने हुए संबंधों का सही इस्तेमाल कर सकें. इस सप्ताह आप वर्तमान में चल रहे कार्यों और पनप रहे नए विचारों पर ध्यान लगा पाएंगे. साथ ही आपको एक से अधिक प्रभावशाली व्यक्तियों से संबंध मज़बूत करने की ज़रूरत है. आप नई गतिविधियों से जुड़े रहेंगे. इस तरह हर चीज को समझकर आप अपनी सोच में एकरूपता और किसी दूसरे विचार के असर से बच पाएंगे. इस तरह से आप अपने प्रयासों में सबसे जरूरी बात यानी निष्पक्षता ला सकेंगे. पहले की सफलताओं के उल्लेख और विवेचन से आप नई परिस्थिति को बेहतर कर पाएंगे.

वृश्चिक
21 अक्तूबर से 20

आप अपने विचारों के सही इस्तेमाल से लोगों को अपने पाले में ला रहे हैं. बदले में आप कई महत्वपूर्ण संबंध बना रहे हैं जो आपकी प्रतिष्ठा बढ़ा रहा है. जब इतना कुछ सही हो रहा हो तो उन मुद्दों से निपटना आसान हो जाएगा जो पहले आपके विकास में रोड़ा बनते रहे हैं. उनके लिए जिन्होंने जिम्मेदारियों और कार्यों के मामले में रास्ता बदला है बड़े लाभ में रहेंगे. इसके अलावा आप की निर्णय क्षमता भी और धारदार होगी और आप जिस काम में जुटेंगे उसे बेहतर स्तर पर पहुंचाएंगे. हालांकि इस सब के लिए जरूरी है आप उन के साथ जुड़े रहें जो कठिन परिस्थितिओं में आपके मददगार हो सकते हैं. बाज़ार का नए दृष्टिकोण से अध्ययन करना सार्थक होगा.

धनु
21 नवंबर से 20 दिसंबर

सुनने में यह भले बड़ा साधारण लगे लेकिन अपने स्रोतों को बेहतर बनाना आपके हाथों को मज़बूत करेगा. लेकिन यह इतना आसान भी नहीं होगा. आपको अपनी कोशिशों को केंद्रित रखने के लिए विशेष ध्यान देने की जरूरत है. अच्छी बात है कि इसके परिणाम बेहतर आ रहे हैं. सप्ताह का पहला हिस्सा मिश्रित परिणाम देगा, वहीं दूसरा हिस्सा आपके फायदे में ही रहेगा. दरअसल यह समय आपके लिए बहुत फायदेमंद रहेगा जब कई तत्व, सूत्र और आशाएं एक साथ जुड़कर एक नया अनुभव गढ़ रही हैं. व्यावसायिक मामलों में अब खर्चों के संतुलन का दौर बीत गया है तो एक बड़ा अवसर प्रतीक्षा में है. आप अगर एक नया उद्यम शुरु कर रहे हैं तो यही समय सही है.

मकर
21 दिसंबर से 20

आप किस दिशा में जाना चाहते हैं यह आप तय कर चुके हैं. आप अब अपने नए विचारों को विकसित के लिए उपलब्ध मंच का इस्तेमाल कर रहे हैं. जाहिर है इसका मतलब कई तरह की नई चुनौतियां, नए शोध और नई जग़हों की यात्रा हो सकता है. इसका यह भी मतलब हो सकता है कि आपको इच्छित सफलता के लिए अपनी कई पसंदीदा चीजों को त्यागना पड़े. आप इस दौरान कई नई चीजों को देखने, सीखने और नए लोगों से मिलने का अवसर मिलेगा. कुल मिलाकर आप अपने भूले बिसरे विचारों को एक ठोस रूप दे पाएंगे. व्यवसायिक मामलों में सभी मसले नियंत्रण में रहेंगे और आप कार्यालयों से लेन देन के मामलों में फायदे में रहेंगे.

कुंभ
21 जनवरी से 20

ऐसे चिन्ह और संकेत जो कुछ समय पहले तक महत्वपूर्ण नहीं थे, अब उनका मतलब समझ में आने लगा है. एक तरह से आपके कार्यस्थल के समीकरणों में बदलाव चल रहा है और सही निर्णय के लिए बड़ी समझदारी से इस बदलाव को समझने की जरूरत है. इसका मतलब है कि किसी भी चीज के नफे–नुकसान को आज और आने वाले कल के हिसाब से समझने की जरूरत है. इसके साथ ही आपको कुछ ऐसे लोगों के साथ काम करना पड़ सकता है जिनकी नियुक्ति अस्थायी हो सकती है. ऐसे में आपको हर दिन के हिसाब से योजना बनाकर काम करने की जरूरत है ताकि किसी अप्रत्याशित बदलाव से आपके काम पर असर न पड़े.

मीन
21 फरवरी से 20 मार्च

दूसरे लोग समय की दिशा साफ होने तक इंतज़ार कर सकते हैं आप नहीं, आप अभी काम करने की ऊर्जा से परिपूर्ण हैं, कम जोखिम भरे खतरे उठाने को तैयार हैं. आप यह समझ पाएंगे कि चुनौतियों से आमने सामने और उन्हीं के तरीके से निपटना किसी पुरानी रणनीति पर चलने से बेहतर है. अच्छी बात है कि बेहतर परिणामों की आपकी भूख आपको बहुत ऊपर ले जाएगी. इसका यह भी मतलब होगा कि जो आपके विशेष कौशल पर संदेह करते थे वह अब दुबारा सोचने को बाध्य होंगे. साथ ही आपको कई नए अनुभव होंगे जो आगे की दिशा तय करने में सहायक होगी. व्यावसायिक मामलों में आप कई विशेष योजनाओं को चालू करेंगे.

जरूरी है दलित–मुस्लिम एकता

वीनू संदल
feedback.chauthiduniya@gmail.com

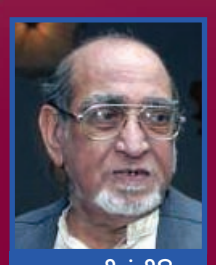

असग़र अली इंजीनियर

दलित–मुस्लिम एकता का नारा जमाने से चला आ रहा है लेकिन इसमें कई परेशानियां हैं. यह नारा मैंने अक्सर असफल होते हुए देखा है. जितने सांप्रदायिक दंगे होते हैं, उनमें दलित इस्तेमाल होते हैं. उस वक्त उनकी भावना हिंदुत्ववादी बन जाती है. यह कहानी सिर्फ गुजरात की कहानी नहीं है. सब जगह देखा गया है. मैं दलित नेताओं से खास तौर से कहना चाहता हूं कि इस एकता को सिर्फ राजनीतिक नारा नहीं बनाया जाए. दलित अवाम में इस एकता की क्या अहमियत है, यह चेतना उनमें पैदा की जाए. गुजरात दंगे के बाद इस मुद्दे पर अहमदाबाद में पहल की गई. उनसे पूछा गया कि ऐसे क्यों होता है तो वे कहने लगे, दंगों के समय वे हमारी बात नहीं सुनते क्योंकि उनमें बाक़ायदा जागृति पैदा करने का काम नहीं होता है. वह सिर्फ नारा रहता है. इसलिए इस पर बाक़ायदा काम हो. दलित मुस्लिम एकता को जगह–जगह मज़बूत बनाया जाए.

हमें इन क्षेत्रों में गंभीरता से काम करना पड़ेगा. यह मेरा विचार है. जब तक हम चेतना पैदा नहीं करेंगे, तब तक हम दलितों के अंदर सही मायने में एकता पैदा नहीं कर सकते. मैं एक बात मुसलमानों के बारे में कहना चाहता हूं. इस्लाम के पांच बुनियादी मूल्य हैं –न्याय, शांति, परोपकार, करुणा और बुद्धिमानी. इन सब का तकाजा यह है कि मुसलमान कमज़ोर तबकों का साथ दें और जब भी दलितों पर जुल्म होता है, उनके साथ खड़े होकर आवाज़ बुलंद करें. लेकिन यह नहीं होता है. दोनों तरफ से इसकी जरूरत है. इसको आप सिर्फ एक नारा मत बनाइए. इसके लिए मुसलमानों को भी काम करना है और दलितों में भी काम करने की जरूरत है. मज़हब के नाम पर कई झगड़े तो होते रहतेहैं, लेकिन जो मज़हब के बुनियादी मूल्य और मान्यताएं हैं, उनकी तरफ हमारी तवज्जो नहीं होती है. उसे हम अपने चरित्र में कभी उतारने का काम नहीं करते हैं. जब तक हम यह नहीं करेंगे, मज़हब झगड़े का कारण बना रहेगा और राजनीति में इसका इस्तेमाल होता रहेगा. मज़हब नहीं टकराते हैं, अपनी–अपनी महत्वकांक्षाएं टकराती हैं. इसमें रुचियों का टकराव होता है, न कि धर्म का. धर्म कभी भी हमें झगड़ने को नहीं कहता है. हमारी रुचियां ही झगड़े के लिए उकसाती हैं.

एक सुझाव सच्चर कमेटी की रिपोर्ट में आया है, जिसमें कहा गया है कि दलित, मुसलमान और पिछड़े वर्ग ज़्यादा पिछड़े हुए हैं. जिस किस्म का विकास हमारे देश में हुआ है, वह सारा अमीरों के हित में ज़्यादा है. हम गांधी जी के विचारों का बहुत गुणगान करते हैं, लेकिन उनके बताए हुए रास्ते पर नहीं चलते. गांधी जी का एक विचार यह है कि सही मायने में विकास वही है, जिसका कमज़ोर से कमज़ोर तबके को फायदा पहुंचे. लेकिन हमारे देश में इसके बिल्कुल विपरीत विकास हुआ है. वास्तव में देखा जाए तो कमज़ोर से कमज़ोर तबके को बिल्कुल नज़रअंदाज किया जाता रहा है और सारा फायदा अमीरों को पहुंचता है. सच्चर कमिटी के जरिए बहुत से तथ्य हमारे सामने आए हैं जो पहले से लोगों को पता था, कम से कम उन लोगों को, जो समाज में काम करते हैं अब एक विश्वसनीय तरीके से, सच्चर कमिटी की रिपोर्ट के जरिए हमारे सामने आए हैं जो पहले से लोगों को पता था, कम से कम उन लोगों को, जो समाज में काम करते हैं अब एक विश्वसनीय तरीके से सच्चर कमिटी की रिपोर्ट के जरिए हमारे सामने आए हैं. दलित अल्पसंख्यक का जो फोरम बना है, उसको हुकूमत पर दबाव डालना चाहिए, जल्दी से जल्दी सुझाव को अमल में लाया जाए. उनमें तीन–चार चीज़ें ऐसी हैं, जो तत्काल करनी चाहिए. एक तो यह है कि मुस्लिम ज़्यादातर निजी या स्व व्यवसाय में हैं, लेकिन उनको बैंको से कर्ज नहीं मिलता है, क्योंकि उनको कर्ज़ लौटाने वाला नहीं समझा जाता है. हुकूमत को चाहिए कि वे मुसलमानों या माइनोरिटीज को आसान किश्तों में भुगतान वाली कर्ज़ कम ब्याज दर पर उपलब्ध कराए. इससे कम से कम आर्थिक खुशहाली हो सकती है, अगर उन्हें बाकायदा कर्ज़ मिलता रहे. वे बाज़ार से कर्ज़ लेते हैं, जो 100–200 फीसदी ब्याज पर होता है. जब तक उनको यह सुविधा उपलब्ध नहीं कराई जाएगी, उनकी खुशहाली में इज़ाफा नहीं हो सकता है. इसलिए सरकार को यह कदम तुरंत उठाना चाहिए. दूसरा, सरकारी दफ्तरों में भागीदारी बढ़ाने का सुझाव सच्चर कमिटी की रिपोर्ट में है. इसको भी जल्दी से जल्दी अमल में लाना चाहिए. इसमें मुसलमानों की बहुत कम भागीदारी है. सारी की सारी सेवाओं में, आईएएस, आईपीएस,आईएफएस को तो छोड़ ही दीजिए, चतुर्थ श्रेणी में भी मुसलमानों की हिस्सेदारी 6–7 परसेंट से आगे नहीं बढ़ती है. जब तक इस बारे में कमीशन नहीं बनेगा और ईमानदारी से उनके प्रति काम नहीं होगा तब तक इसमें फर्क नहीं आएगा. मैं रिजर्वेशन नहीं मांग रहा हूं. मैं रिजर्वेशन के खिलाफ हूं, इसका कोई फायदा नहीं होगा. झगड़े बढ़ेंगे और राजनीतिक दल उसका फायदा उठाएंगे. इसलिए बराबरी में, अनुपात में मुसलमानों को नौकरी मिलना चाहिए, ताकि उनमें भी कुछ सशक्तीकरण का भाव पैदा हो जो बिना सरकारी नौकरियों के नहीं हो सकती है. फौज में इसके बारे में बहुत हंगामा होता है, क्योंकि अल्पसंख्यक सेना में भागीदारी नहीं के बराबर मिलती है. अगर देश की सेवा करना चाहते हैं तो क्या उन्हें मौका भी नहीं दिया जाएगा. सेना में जाना है तो मतलब कि जान पर खेलना है. अपने मुल्क की हिफाजत के लिए अपनी जान देना है. अगर मुसलमान सेना में जाना चाहता है तो क्यों न जाए, क्यों न उसको ज़्यादा से ज़्यादा भागीदारी दिया जाए. यह ठीक है कि प्रतिभा और स्वास्थ्य की बात महत्वपूर्ण है लेकिन प्रतिभा और स्वास्थ्य तो पहले से है. अगर सेना में उनको लिया जाता है तो यह मुसलमानों को अपनी वफादारी दिखाने का बेहतरीन मौका है. उसी प्रकार पुलिस में भी मुसलमानों को भागीदारी काफी कम है. सच्चर कमिटी ने सारे आंकड़े दिए हैं. क्यों न कोशिश की जाए कि ज़्यादा से ज़्यादा मुसलमान पुलिस फोर्स में भी आएं. इसलिए नहीं कि दंगे उससे नियंत्रित हो जाएंगे. दंगे सिर्फ मुसलमानों के होने से नियंत्रित नहीं होते हैं. वे तो राजनीतिक स्तर पर कंट्रोल किए जा सकते हैं. केरल में जहां मुसलमानों का बहुत कम प्रतिनिधित्व है, फिर भी वहां दंगे नहीं होते हैं, क्योंकि यह पुलिस फोर्स में राजनीतिक इच्छाशक्ति का सवाल है. यह इसलिए होना चाहिए कि मुसलमानों को भी अपने मुल्क में, अपने आवाम के लिए, अपनी सेवा पेश करने का हक है. उनको भी यह मौका मिलना चाहिए कि वे पुलिस सर्विस में काम करें. तकनीकी शिक्षण संस्थाओं में भी जगह मिलनी चाहिए. क्योंकि मुसलमानों की बहुत बड़ी तादाद कारीगरी और स्वरोजगार से जुड़ा है.

दलित, मुसलमान और पिछड़े वर्ग ज़्यादा पिछड़े हुए हैं. जिस किस्म का विकास हमारे देश में हुआ है, वह सारा अमीरों के हित में ज़्यादा है. हम गांधी जी के विचारों का बहुत गुणगान करते हैं, लेकिन उनके बताए हुए रास्ते पर नहीं चलते. गांधी जी का एक विचार यह है कि सही मायने में विकास वही है, जिसका कमज़ोर से कमज़ोर तबके को फायदा पहुंचे.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

एक लैपटॉप दो स्क्रीन

'जी स्क्रीन' लेकर आया है एक लैपटॉप पर दो स्क्रीन का मज़ा. बाज़ार में आए नए 'जी 400' की दोनों स्क्रीन 15.4 इंच की है, जिससे एक साथ दो जगह पर काम करने का विकल्प मिलता है. डयूल स्क्रीन होने के साथ-साथ इस लैपटॉप में और भी खूबियां मौजूद हैं. जैसे 8 जीबी की रैम, 6 यूएसबी, 2.0 पोर्ट और 500 जीबी की बड़ी हार्ड ड्राइव. इस बड़ी हार्ड ड्राइव के कारण यूजर्स ज़्यादा मात्रा में डाटा जमा कर सकते हैं. टी 9600 के साथ इसमें इंटेल कोर - 2 डियो 2.8 गीगाहट्र्ज़ और पी 8400 वर्ज़न में 2.26 जी हट्र्ज़ लगाया गया है. इस लैपटॉप का वज़न सिर्फ 3.49 किलोग्राम है, जो इसे बेहद हल्का बनाता है. मार्केट में इस नए लैपटॉप की मांग काफी ज़ोर पकड़ रही है.

हैरी पॉटर के साथ गेम बजाओ

हैरी पॉटर के साथ मिल कर उनके दुश्मनों का सामना करना किसी के लिए भी एक सपना ही होगा. और जल्द ही ये सपना हक़ीक़त में बदलने वाला है. जी हां, 'इलेक्ट्रॉनिक आर्ट्स एंड वारनर ब्रदर्स' लेकर आ रहे हैं हैरी पॉटर का नया गेम हैरी पॉटर एंड हाफ ब्लड प्रिंस. जैसा कि नाम से ही जाहिर होता है, ये गेम पूरी तरह हैरी पॉटर सीरीज़ की छठी किताब पर आधारित होगा. बस अंतर ये होगा कि इस गेम के जरिए आप हैरी पॉटर की दुनिया में खुद भी शामिल हो सकेंगे और उनको ज़्यादा क़रीब से महसूस कर पाएंगे. इस किताब पर बन रही फिल्म को भी गेम के साथ ही 17 जुलाई 2009 को रिलीज किया जाएगा. इस गेम में हैरी और बाक़ी खिलाड़ी होगवार्ट्ज स्कूल ऑफ विचक्राफ्ट एंड विजाड्री जाते हैं, जहां हैरी अपनी अगली क्लास में पहुंच गया है. होगवार्ट्ज में यह उसका छठा साल है और हर बार की तरह वह इस बार भी नई मुसीबतों से अपने आपको और अपने दोस्तों को बचाने की जद्दोज़हद में लगा हुआ है.हैरी पॉटर की दुनिया जादुई है इसलिए यहां खिलाड़ियों का सामना जादुई चीज़ों और मुसीबतों से ही होता है.

हैरी को अपने विरोधी हाउस नागशक्ति के ड्रैको मालफॉए और उसके दोस्तों की साजिश का पर्दाफाश करना है. अपने सबसे पुराने दुश्मन वाल्डेमॉट से भी बचना है. इस बार एक नया राज भी है, राज-हाफ ब्लड प्रिंस का. हैरी और बाकी खिलाड़ी इन सब बातों को सुलझाते हैं. वे जादूगरी करते हुए हैरी के हाउस 'गरुड़द्वार' की क्वीडीच टीम को जीत की तरफ ले जाते हैं. हर तरह की मुसीबतों से दो-चार होते हुए खिलाड़ी गेम के आख़िरी पड़ाव तक पहुंचते हैं और अंत में हाफ ब्लड प्रिंस की सच्चाई का पता लगा कर सबके सामने लाते हैं.

गेम के ग्राफिक्स लाजवाब हैं, खासकर होगवार्ट्ज स्कूल ऑफ विचक्राफ्ट एंड विजाड्री के क्सालेज और हॉस्टल का बेहतरीन लुक तैयार किया गया है. साथ ही हैरी पॉटर सीरीज के पिछले गेम हैरी पॉटर एंड द आर्डर ऑफ फीनीक्स से इस बार खिलाडियों के लुक में भी बदलाव किया गया है.

हैरी और उसके साथी पिछली गेम से एक साल बड़े हो गए हैं इसलिए इस बार खेल में रोमांस का एंगल भी जोड़ दिया है. हैरी पॉटर के दीवाने इस गेम का इंतज़ार बड़े दिनों से कर रहे थे. पिछले साल फिल्म के साथ ही गेम की रीलीज भी टल गई थी.

सावधान! अब आपकी ड्राइविंग की ग़लती पकड़ लेगा कैमरा

कई बार रोड एक्सीडेंट में झगड़ा इस बात पर कम होता है कि नुक़सान किसका हुआ बल्कि इस बात पर ज़्यादा होता है कि ग़लती आख़िर थी किसकी. अब ऐसे में अगर कोई तीसरा व्यक्ति घटनास्थल पर मौजूद हो, तो हल निकले भी, पर अगर कोई हो ही ना तो झगड़ा टले तो टले कैसे. ऐसी ही मुसीबत का समाधान अब निकल आया है. अब इस सवाल का सबसे बेहतरीन जवाब होगा रियर व्यू मिरर कार कैमरा रिकॉर्डर. जी हां, अब मार्केट में ऐसे रेयर व्यू मिरर जल्द ही मौजूद होंगे, जिनमें वीडियो कैमरा लगा होगा. यह कैमरा रिकॉर्ड करने के साथ-साथ डीवीआर एवं ब्लाइंड स्पॉट रिडक्शन का काम भी करेगा. कैमरे में रिकॉर्ड होनेवाली हर चीज़ उसके एसडी कार्ड में सेव होगी. वीडियो के साथ ही इसमें रिकॉर्डिंग का दिन और समय भी रिकॉर्ड होगा. इसकी सबसे अच्छी बात तो यह है कि यह डिवाइस आपके मिरर के साथ ही आसानी से लग जाएगा, ऐसे में आपका ज़्यादा समय और पैसा भी बरबाद नहीं होगा. इन सभी खूबियों के अतिरिक्त इस वीडियो कैमरे में 2.5 इंच की एलसीडी स्क्रीन और एडजस्टेबल लेंस जैसी सुविधाएं भी हैं. कैमरे में रिकॉर्डिंग उसी समय शुरू हो जाती है, जब गाड़ी चलना शुरू करती है. बाज़ार में इस कैमरे की क़ीमत मात्र 20,000 रुपए है.

जासूस कैमरा

एक आम घड़ी की तरह दिखाई देने वाली इस घड़ी को आम समझने की भूल बिल्कुल न करें. असल में यह एक स्पाई (जासूस) गैजेट है. इस घड़ी की सुइयों में छुपा है एक कैमरा, जिससे जब चाहें, जहां चाहें वीडियो रिकॉर्डिंग की जा सकती है. इसमें 3,52,288 वीडियो रिज़ॉल्यूशन तक की सुविधा दी जा रही है. इसमें 2 जीबी की मैमोरी के साथ-साथ रिचार्जेबल बैटरी भी मौजूद है, जिसे यूएसबी पोर्ट से चार्ज कर कंप्यूटर से जोड़ा जा सकता है. 'डो' कंपनी की इस घड़ी की क़ीमत 236 डॉलर रखी गई है. यानी 11 हज़ार 781 रुपए.

सोने जैसा तेरा माउस

क्या आप भी किंग मिडास की तरह सोने के शौकीन हैं और अपनी इस चाहत को पूरी नहीं कर पा रहे हैं? तो घबराइए नहीं, आपकी इसी चाहत को पूरी करने के लिए सोने जैसा लगने वाला गोल्ड बुलियन वायरलेस माउस बाज़ार में उतारा गया है. गोल्ड बुलियन नाम के इस माउस को अगर दूर से देखें तो यह किसी सोने के बिस्कुट से कम नहीं लगता.आम माउस के मुक़ाबले गोल्ड बुलियन बहुत तेज़ी से काम करता है. सोने के मुकुट जैसा दिखने वाला यह माउस पूरी तरह वायरलेस है. इसकी यही खूबी इसे दूसरे माउस से बेहतर बनाती है. इसे चार्ज करने के लिए अलग से कोई चार्जर ख़रीदने की भी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि यह यूएसबी पोर्ट से ही चार्ज हो जाता है. विश्व बाज़ार में इसकी क़ीमत 24.99 डॉलर रखी गई है. यानी भारतीय बाज़ार में इसकी क़ीमत होगी 1,247 रुपए. अब अगर सोने के बिस्कुट जैसे लगने वाला माउस इतनी कम कीमत पर मिले तो कोई और कुछ क्यों ले, ये ना ले.

की-बोर्ड में कंप्यूटर

बाज़ार में कितना भी नया और शानदार गैजेट क्यों न उतर आए, कुछ सालों बाद उसका लिलिपुट वर्ज़न आकर हंगामा मचा ही देता है. ऐसा ही कुछ एसस कंपनी ने भी किया है. एसस कंपनी ने अपने लिए ईईई पीस की-बोर्ड को बाज़ार में उतार कर हलचल मचा दी है. यह की-बोर्ड अपने आप में एक छोटे-से कंप्यूटर का काम करता है. इस की-बोर्ड की सबसे बड़ी ख़ासियत है, इसमें लगा 5 सेंटीमीटर का टचस्क्रीन. यानी अब हर बार टाइप करने के बाद आपको अपनी गर्दन ऊपर करने की तक़लीफ़ नहीं उठानी पड़ेगी. इसके अलावा इसमें लगा है 1.6 गीगाहट्र्ज़ का एटम प्रोसेसर, जिसके साथ है 1 जीबी रैम. इसकी विशेषता है कि इसमें लगे यूएसबी, बीजीए और एचडीएमआई पोर्ट की मदद से इसे कंप्यूटर मॉनिटर या फिर किसी टीवी स्क्रीन से भी जोड़ा जा सकता है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

न्यूज़ीलैंड पर फतह से बनी एक मुक़म्मल टीम

भारत ने आष्ठि री मोर्चा भी फतह कर लिया. जिस जीत के लिए भारतीय क्रिकेट वर्षों से आस लगाए बैठा था, वह आष्ठि रकार मिल ही गई. जो न्यूज़ीलैंड भारतीय क्रिकेट टीम के लिए 41 वर्षों से एक अभेद्य किला बना हुआ था, इस टीम ने उस पर जीत का झंडा लहरा ही दिया. भारतीय टीम ने इस पूरी सीरीज़ में जिस तरह का खेल दिखाया, उसे देख कर तो यही लगा कि पूरी टीम मानो 41 सालों के इतिहास को बदलने का फ़ैसला कर के आई हो. तीनों टेस्ट मैच में भारतीय टीम खेल के हर पहलू में न्यूज़ीलैंड पर भारी पड़ी.

पहले ही टेस्ट में भारतीय क्रिकेट टीम पहली ही गेंद से न्यूज़ीलैंड पर हावी नज़र आई, गंभीर पूरे जोश में थे तो द्रविड़ पुराने रंग में, इन सब पर भारी पड़ा मास्टर सचिन का शतक, इन पारियों ने न्यूज़ीलैंड की कमर तोड़ दी. बचा हुआ काम भज्जी और ज़हीर ने निपटा कर भारत को 1-0 से आगे कर दिया. अगले टेस्ट में भारत को फालोऑन झेलना पड़ा. भारतीय टीम पर फिर सवाल खड़े होने लगे. कहा गया टीम फिर हाथ आया मौक़ा गंवाने वाली है, लेकिन यह टीम तो जुदा थी. इसके बल्लेबाज़ पिच पर अड़ गए और सात घंटे खेल कर मैच बचा लिया. दबाव में जम कर खेलने का यह स्टाइल भारतीय क्रिकेट के लिए नया है. इस मैच ने यह दिखा दिया कि भारतीय टीम आक्रमण के साथ-साथ टिक कर खेलने में भी माहिर है. तीसरे टेस्ट में बारिश ने भले ही भारत की टीम को जीत से महरूम कर दिया हो, लेकिन यह टेस्ट भी भारतीय टीम के दबदबे के लिए याद किया जाएगा. गंभीर की शतकीय पारी और ज़हीर की गेंदबाज़ी ने इस टेस्ट में न्यूज़ीलैंड की हालत पतली कर दी थी.

सीरीज़ पर कब्जा कर भारतीय टीम ने फिर साबित कर दिया कि आज की क्रिकेटिंग दुनिया में भारतीय टीम सबसे मज़बूत टीम है. आईसीसी की रैंकिंग में भले ही अभी भारत तीसरे पायदान पर हो, लेकिन यह तो उसके प्रतिद्वंद्वी भी मान रहे हैं कि मौजूदा भारतीय टीम अभी सबसे बेहतरीन क्रिकेट खेल रही है. न्यूज़ीलैंड के दिग्गज रिचर्ड हैडली इस टीम को सबसे संतुलित और मनोरंजक टीम मानते हैं. उनके हिसाब से भारतीय टीम में सीनियर्स और नए खिलाड़ियों का जो बेहतरीन तालमेल है, वह इसे सबसे ष्ठ तरनाक टीम बनाता है.

भारत की टीम इस दौरे पर पूरी तरह से एकजुट खेली. भारतीय टीम के खिलाड़ियों ने मौजूदा सीरीज़ में व्यक्तिगत कीर्तिमान तो खड़े किए ही, साथ ही सा-झेदारियों में जीत की नींव रखी. बल्ले और गेंद दोनों से जौहर दिखाने में सभी साथ दिखे. ज़रूरत पड़ने पर गेंदबाज़ों ने बल्ले से कमाल दिखाया, तो बल्ले के शेर भी क्षेत्ररक्षण और गेंदबाज़ी से हाथ बंटाते नज़र आए.

भारत के बल्लेबाज़ों ने इस पूरी सीरीज़ में 6 बार सौ से ऊपर की साझेदारी जड़ी. इसके सभी मुख्य बल्लेबाज़ों का औसत 60 के पार रहा. गेंदबाज़ी में चारों मुख्य गेंदबाज़ों ने 43 विकेट झटक लिए. ये प्रदर्शन हाल के दिनों में इस टीम की पहचान बन गया है.

यह संपूर्ण टीम है. टीम में सचिन, द्रविड़ और लक्ष्मण का अनुभव है, तो धोनी, गंभीर, युवराज और सहवाग का जोश भी है. होश और जोश की इसी साझेदारी ने भारत को पिछले 10 टेस्ट मैचों में अजेय बनाया हुआ है.

भारत की टीम इस दौरे पर पूरी तरह से एकजुट होकर खेली. भारतीय टीम के खिलाड़ियों ने मौजूदा सीरीज़ में व्यक्तिगत कीर्तिमान तो खड़े किए ही, साथ ही साझेदारियों में जीत की नींव रखी. बल्ले और गेंद दोनों से जौहर दिखाने में सभी साथ दिखे.

सीख लिया मेहमानी में जीतना

घर के शेर... लंबे समय से भारतीय क्रिकेट का मखौल उड़ाने वालों का यह पसंदीदा मुहावरा रहा है. लेकिन अब इस मुहावरे का भारतीय टीम के लिए कोई मतलब नहीं रह गया है. भारतीय शेरों ने इस मुहावरे की हवा निकाल दी है. ऑस्ट्रेलिया और इंग्लैंड ने तो भारतीय ताक़त का नज़ारा देख ही लिया था, टीम ने न्यूज़ीलैंड के ष्ठि लाफ़ चल रही टेस्ट सीरीज़ जीत कर रही-सही कसर पूरी कर दी है. न्यूज़ीलैंड की धरती पर हासिल की गई इस जीत के मायने बहुत बड़े हैं. इस जीत की अहमियत का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आष्ठि री बार जब किसी भारतीय टीम ने न्यूज़ीलैंड में टेस्ट सीरीज़ जीती थी, तो मौजूदा भारतीय टीम का कोई सदस्य पैदा भी नहीं हुआ था. यह जीत 41 सालों के इंतज़ार के बाद आई है. इस जीत ने भारतीय झोली में गिरने से पहले लंबा इंतज़ार भले कराया हो, लेकिन जिस अंदाज़ में यह जीत मिली है, उसने भारतीय क्रिकेट के इस स्वर्णिम दौर में एक और सुनहरा अध्याय और जोड़ दिया है. जब भारतीय क्रिकेट का इतिहास लिखा जाएगा, तो इस समय को उस दौर के रूप में याद किया जाएगा, जब भारतीय क्रिकेट के शेर ने विदेशी ज़मीन पर दहाड़ना सीख लिया. ये वो दौर है, जब अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट में भारत की हैसियत घर के मज़बूत खिलाड़ियों के साथ-साथ बाहरी धरती पर भी बेहतर खेलने वाली टीम की बनी है. पिछले पांच सालों में भारतीय टीम के विदेशों में टेस्ट रिकॉर्ड पर नज़र डालें तो यह बात साफ हो जाती है. भारतीय क्रिकेट टीम ने 2004 से अब तक विदेशी ज़मीन पर खेले 33 टेस्ट मैचों में से 13 में जीत हासिल की है. पिछले पांच सालों में भारत ने बाहर खेली गई 12 टेस्ट सीरीज़ में से सात पर कब्जा किया है.

साल	मैच	जीत	जीत का प्रतिशत
2004-2009	33	13	40.44
1932-2004	178	19	29.20
1990-2004	62	7	32.40

ये आंकड़े भारतीय क्रिकेट के बदलते मिज़ाज की एक झलक भर हैं. दरअसल यह बदलाव भारतीय क्रिकेट के आंकड़ों में ही नहीं, उनके बॉडी लैंग्वेज और खेलने के तरीक़े में भी नज़र आता है. ये भारतीय टीम जीत के मेहनत के साथ जान लगाने को भी तैयार नज़र आती है. इस टीम में हार के मुंह से जीत छीनने का जज़्बा दिखाई देता है. यह कमोबेश वही टीम है, जिसे सौरभ गांगुली और जॉन राइट ने तैयार किया था. सौरभ गजब जीवट वाले खिलाड़ी और कप्तान रहे. उनकी इसी संघर्ष-क्षमता को उनकी टीम ने भी अपनाया. ईंट का जवाब पत्थर से देने की इसी आदत ने उन्हें भारत का सबसे सफल कप्तान बनाया और टीम इंडिया में जीत की प्यास भी जगा दी. ऑस्ट्रेलिया के खिलाफ 2004 में टेस्ट सीरीज़ में बेहतर प्रदर्शन से ही भारतीय टीम में विदेशी धरती पर जीत का विश्वास पैदा हुआ. इसी परंपरा को पहले द्रविड़, कुंबले और अब धोनी आगे बढ़ा रहे हैं.

इन पांच सालों में भारत ने इंग्लैंड, पाकिस्तान, वेस्टइंडीज़ और न्यूज़ीलैंड में ऐतिहासिक सीरीज़ जीती हैं. भारत ही वह टीम रही है, जिसने हाल के वर्षों में ऑस्ट्रेलिया की टेस्ट बादशाहत को टक्कर दी हो. घर में तो भारत को हराना हमेशा से ही मुश्किल रहा है. ष्ठ र, जिस तरह भारतीय टीम अब विदेशों में कमाल दिखा रही है, उससे तो लगता है कि यक़ीनन दुनिया की सबसे बेहतरीन टीम बनने का ख्वाब जल्द ही पूरा हो जाएगा.

विदेशी ज़मीन पर जीत के सितारे

राहुल द्रविड़

दीवार, द वॉल, मिस्टर भरोसेमंद और जाने कितने ही ऐसे विशेषण राहुल द्रविड़ के लिए गढ़े गए. विदेशों में भारतीय टीम को जीत दिलाने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान द्रविड़ का ही रहा है. साझेदारियां बनाना उनके खेल की सबसे बड़ी खूबी रही है. अगर विदेशी ज़मीन पर उनके प्रदर्शन पर नज़र डालें, तो साफ़ है कि क्यों उन्हें हाल के वर्षों में भारतीय बल्लेबाज़ी की रीढ़ कहा जाता रहा है.

साल	मैच	रन	उच्चतम	औसत	शतक	कैच
2004-2009	33	2652	270	53.04	6	48

अनिल कुंबले

कोई भी भारतीय क्रिकेट प्रेमी वह नज़ारा नहीं भूल सकता, जब वेस्टइंडीज़ के दौरे पर जबड़ा टूटे होने के बावजूद अनिल कुंबले किस तरह गेंदबाज़ी करने उतरे थे. खेल और टीम के प्रति यह समर्पण उन्हें भारतीय क्रिकेट का बड़ा हीरो तो बनाता ही है, उनके आंकड़े उन्हें विदेशी धरती पर भारत का सबसे सफल गेंदबाज़ बनाते हैं.

साल	मैच	रन	उच्चतम	औसत	शतक	विकेट	सर्वश्रेष्ठ	औसत	5 से ज्यादा विकेट	कैच
2004-2008	30	619	110*	17.68	1	134	8/141	32.13	4	14

ज़हीर ख़ान

भारत से बाहर भारतीय गेंदबाज़ी में जो सबसे बड़ी कमी थी, वह एक घातक और अनुभवी तेज़ गेंदबाज़ की थी. ज़हीर ष्ठ ान ने इस कमी को दूर किया है. न सिर्फ ज़हीर ने भारतीय गेंदबाज़ी का आक्रमण संभाला, बल्कि आनेवाले नए तेज़ गेंदबाज़ों के लिए सबसे बड़ी प्रेरणा भी बने. कभी-कभी तो वह गेंदबाज़ी के कप्तान की भूमिका निभाते नज़र आते हैं.

साल	मैच	रन	उच्चतम	औसत	विकेट	सर्वश्रेष्ठ	औसत	5से ज़्यादा विकेट	कैच
2004-2009	22	406	75	18.45	90	5/34	30.26	3	5

सचिन तेंदुलकर

सचिन और भारतीय क्रिकेट, दोनों के बारे में अलग-अलग बात नहीं हो सकती. भारत की सफलता, चाहे वह वन डे हो या टेस्ट मैच, बिना सचिन के पूरी नहीं हो सकती. सचिन की शख्सियत के बारे में कहने को विशेषण ष्ठ त्म हो चुके हैं. आंकड़ों को ही बोलने दीजिए.

साल	मैच	रन	उच्चतम	औसत	शतक	विकेट	सर्वश्रेष्ठ	औसत	कैच
2004-2009	27	2466	248*	63.23	8	12	2/35	45.50	26

वीवीएस लक्ष्मण

वेरी वेरी स्पेशल... बस यही तीन शब्द भारतीय क्रिकेट के मौजूदा दौर में लक्ष्मण के असर की बात समझाने के लिए काफी हैं. लक्ष्मण दबाव में बेहतर खेलते हैं. साझेदारी बनाने में माहिर हैं और उनके पिच पर जमे रहने से साथी की हिम्मत बनी रहती है. लक्ष्मण अक्सर पुछल्ले बल्लेबाज़ों के साथ लंबी साझेदारी बनाने में माहिर हैं.

साल	मैच	रन	उच्चतम	औसत	शतक	कैच
2004-2009	31	2147	178	47.71	5	32

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सिनेमा की कमाई में हिस्सेदारी का झगड़ा

'गजनी' रीलीज हो रही है! अब आप कहेंगे, यह ख़बर तो पुरानी है? नहीं मेहरबान, ये ख़बर पुरानी नहीं है. 'गजनी' में नए फुटेज जोड़ कर उसे री-रीलीज किया जा रहा है. 'गजनी' और कई पुरानी फिल्में दोबारा सिनेमाघरों में नज़र आने वाली हैं. यह सब मल्टीप्लेक्सेज और फिल्म निर्माताओं के विवाद की वजह से हो रहा है. मल्टीप्लेक्सेज और फिल्म निर्माताओं के विवाद का हल निकलता नहीं दिख रहा है. अब निर्माताओं ने फ़ैसला कर लिया है कि 4 अप्रैल के बाद कोई नई फिल्म रिलीज़ नहीं होगी. निर्माताओं की मांग है कि फिल्म के टिकटों की कमाई में से आधा हिस्सा दिया जाए. वहीं मल्टीप्लेक्सेज के मालिकों का कहना है कि यह मांग नाजायज़ है. वे पुराने तरीक़े पर ही अड़े हैं, जिसमें कमाई का बंटवारा फिल्म की परफॉर्मेंस के आधार पर होता है. उनका कहना है कि अगर निर्माताओं को फ़ायदा चाहिए, तो बड़े सितारों की फीस कम करनी पड़ेगी.

फिल्म उद्योग पहले से ही मंदी की मार झेल रहा है. अब इस विवाद की वजह से नई फिल्मों की रीलीज़ पर भी ब्रेक लग गया है. ऐसे में सिनेमाघरों के पास पुरानी फिल्में चलाने के अलावा कोई चारा नहीं है. यही नहीं, इन मल्टीप्लेक्स संचालकों ने थिएटरों के आसपास रहने वाले गैर हिंदीभाषी लोगों को अपने यहां आकर्षित करने के लिए प्रादेशिक भाषाओं की सुपरहिट फिल्मों के स्पेशल शोज़ करने की प्लानिंग की है. साउथ दिल्ली स्थित एक मल्टीप्लेक्स से जुड़े टीएस सुब्बू कहते हैं कि हमने वीकएंड पर सुबह और दोपहर के शो में साउथ के सुपरस्टार रजनीकांत, ममूटी, कमल हसन और प्रभु देवा की सुपरहिट फिल्मों को रियायती रेट पर दिखाने की प्लानिंग की है.

हालातों के मद्देनज़र आमिर और शाहरूख भी पुराने गिले-शिकवे छोड़ साथ आ गए हैं. आमिर ख़ान और शाहरुख ख़ान ने जब देखा कि दोनों पक्षों के बीच समझौता होने की संभावना नज़र नहीं आ रही है, तो उन्होंने विवाद जल्द निपटाने की अपील जारी कर दी. उन्होंने यह क़दम इसलिए बढ़ाया क्योंकि फिल्म इंडस्ट्री में उनकी बात ध्यान से सुनी जाती है और सारे निर्माताओं और मल्टीप्लेक्स मालिकों से उनके रिश्ते भी अच्छे हैं. आमिर और शाहरुख ने दोनों पक्षों के बीच बराबरी की हिस्सेदारी की वक़ालत की है. आख़िर दोनों खुद भी निर्माता हैं. लेकिन अगर इनकी भी बात का असर नहीं हुआ, तो सबसे ज़्यादा घाटा जनता को ही होगा.

ख़ैर, जब तक ये मामला सुलझता नहीं है, तब तक दर्शकों को पुरानी फिल्में देख कर ही संतोष करना पड़ेगा.

दुनिया

पापा 'पापा' नहीं लगते हीरो लगते हैं

फिल्म दिल्ली-6 में 'कबूतरी मसकली' के नाम से मशहूर हो जाने से परेशान अभिनेत्री सोनम कपूर को अब एक नई परेशानी सता रही है. जब सोनम कपूर को उनके पिता अनिल कपूर के साथ स्क्रीन शेयर करने के लिए कहा जाता है, तो वह असहज हो जाती हैं. उनका कहना है कि बाप बेटी के साथ आने के लिए तो दर्शकों को इंतज़ार करना पड़ सकता है. दिल्ली-6 की इस बिट्टू का मानना है कि सीनियर कपूर अपनी उम्र से काफी कम के लगते हैं और स्क्रीन पर सोनम के पिता की भूमिका का अभिनय निभाते हुए वह अच्छे नहीं लगेंगे. ख़बर है कि अनिल ने अपनी होम प्रोडक्शन फिल्म 'आयशा' में भी सोनम के पिता का रोल करने से इनक़ार कर दिया है. सोनम के अनुसार, अनिल उनके पिता के अभिनय में सही नहीं लगेंगे. इससे पहले भी दिल्ली 6 में उन्होंने सोनम के पिता का अभिनय करने से इनक़ार कर दिया था. सोनम का मानना है कि अनिल और वह बाप-बेटी जैसे नहीं लगते हैं और वह अपने उतने बड़े होने का इंतज़ार करेंगी, जब तक अनिल कपूर उनके पिता न लगने लगें.

सोनम से जब पूछा गया कि अनिल आपकी उम्र की लड़कियों के साथ काम कर रहे हैं, तो सोनम का कहना था कि अनिल अपनी हर नायिका के साथ काफी अच्छे लगते हैं और स्लमडॉग मिलिनेयर के बाद यह उनकी दूसरी पारी कही जा सकती है.

स्टैलोन के लिए करना पड़ेगा इंतज़ार

हॉलीवुड के सितारे सिल्वेस्टर स्टैलोन के भारतीय दीवानों को उन्हें हिंदी फिल्मों में देखने के लिए और इंतज़ार करना पड़ सकता है. स्टैलोन साजिद नाडियाडवाला की क़मबख़्त इश्क में नज़र आनेवाले हैं. अक्षय कुमार और करीना की मुख्य भूमिका वाली इस फिल्म में स्टैलोन खुद का ही किरदार निभाते नज़र आएंगे. लेकिन फिल्म इंडस्ट्री में जारी विवाद से इस फिल्म की रीलीज़ टल सकती है. मल्टीप्लेक्स और निर्माताओं के बीच जारी विवाद की काली छाया ने क़मबख़्त इश्क को भी ग्रहण लगा दिया है. फिल्म अब इस महीने रीलीज नहीं हो पाएगी. फिल्म में स्टैलोन करीना से इश्क फरमाते नज़र आएंगे. अब अक्षय से तो टक्कर होनी ही है क्योंकि अक्षय को तो यह रास नहीं आने वाला.

रॉकी और रैंबो जैसी फिल्मों के सितारे स्टैलोन जब भारतीय खिलाड़ी अक्षय कुमार के सामने होंगे तो मुकाबला दिलचस्प होगा. फिलहाल तो उनके दीवाने इंतज़ार में हैं.

अब छोटा बच्चा जान के इनको नहीं देखना रे...

फिल्म जगत की चमकदार दुनिया में नए कलाकारों का आना-जाना तो लगा ही रहता है. कई आकर गुम हो जाते हैं, तो कई बड़े सितारे बन कर फिल्मों के ऊंचे आसमान पर टिमटिमाते हैं. इसी भीड़ में चंद ऐसे कलाकार भी होते हैं, जिनका रिश्ता बचपन से ही फिल्मों से जुड़ा होता है. अपनी पहली फिल्म 'ब्लैक' से दर्शकों के बीच गहरा असर छोड़ने वाली नन्हीं कलाकार आयशा कपूर और तुस्सी जा रहे हो, तुस्सी ना जायो और जलेबी बोल कर दर्शकों के दिल पर अमिट छाप छोड़ने वाले परज़ान दस्तूर जल्द ही सिकंदर नाम की एक फिल्म में बतौर नायक-नायिका नज़र आएंगे.

पिछले साल आई फिल्म 'आप का सुरूर' की नायिका हंसिका मोटवानी भी इससे पहले धारावाहिक 'शाका लाका बूम बूम' और हृतिक की 'कोई मिल गया' जैसी फिल्मों में बाल कलाकार के रूप में अपना सिक्का जमा चुकी थीं. दर्शकों के लिए आश्चर्य की बात यह रहती है कि जिन बच्चों को वह फिल्मों, सीरियल्स और विज्ञापनों में देखते आ रहे होते हैं, वही बच्चे कुछ सालों बाद नायक-नायिका बन कर स्क्रीन पर अपने अभिनय का जलवा बिखेरते नज़र आने लगते हैं. इनकी स्क्रीन पर मौजूदगी भी काफी दमदार होती है. आयशा टाकिया और शाहिद कपूर का बरसों पहले आया 'कॉमप्लान ड्रिंक' का विज्ञापन देख कर किसने सोचा होगा कि यह जोड़ी बरसों बाद 'फुल एंड फाइनल' फिल्म में बतौर हीरो-हीरोइन के रूप में दिखाई देगी? इमरान ख़ान, हृतिक रोशन, उर्मिला, कुणाल खेमू, पद्मिनी कोल्हापुरे, ऋषि कपूर, तबस्सुम, सारिका, सचिन - ये सभी कलाकार बचपन में फिल्मों का स्वाद चखने के बाद भी दोबारा पर्दे पर अपनी क़िस्मत आजमाने से नहीं चूके और इनमें से कई नाम आज बॉलीवुड पर राज कर रहें हैं. छोटा बच्चा जानकर हमको ना समझाना रे गाने वाले आदित्य नारायण भी अब छोटे बच्चे नहीं रहे. वह जल्द ही विक्रम भट्ट की एक निर्माणाधीन फिल्म में आ रहे हैं. अभी से एक करोड़ की मांग करने वाले 'तारे ज़मीन पर' के दर्शील सफारी भी अगर भविष्य में पेड़ों के इर्द-गिर्द नाचते-गाते नज़र आएं, तो चौंकिएगा नहीं. ये सभी बाल कलाकार बेहद प्रोफेशनल हैं और इतनी छोटी-सी उम्र से अपने काम में इतने माहिर हो चुके हैं कि इसीसे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि इनका भविष्य कितना चमकदार होगा.

कौन बनेगी जेसिका लाल

आपको जेसिका लाल याद होगी, जी हां वही मॉडल जेसिका लाल जिसकी हत्या ने पूरे देश को सकते में डाल दिया था. जेसिका लाल की हत्या का मामला पूरे देश भर में चर्चित रहा तो फिल्म जगत इससे अछूता कैसे रहता. जेसिका अपने समय में एक मशहूर मॉडल थीं लेकिन अब सवाल उठ गया है कि रूपहले पर्दे पर जेसिका कौन बनेगी. यही सवाल आजकल आमिर फेम निर्देशक राजकुमार गुप्ता पूछ रहे हैं. वह तलाश रहे हैं कोई ऐसा चेहरा जो जेसिका बन सके. दरअसल राजकुमार गुप्ता आजकल दिल्ली के बहुचर्चित जेसिका लाल हत्याकांड पर एक फिल्म बनाने की तैयारी कर रहे हैं. फिल्म की स्क्रिप्ट पूरी हो गई है. इस फिल्म का नाम नो वन किल्ड जेसिका रखा गया है.

जेसिका बनने के लिए सितारों की कोई कमी नहीं है. आमिर फिल्म का दमदार निर्देशन करके अपनी पहचान बनाने वाले राजकुमार के साथ बड़े-बड़े सितारे काम करने को राजी हैं, लेकिन राजकुमार अभी भी जेसिका लाल के किरदार के लिए परफेक्ट अदाकार की तलाश में जुटे हैं. उन्हें जब तक उनकी परफेक्ट जेसिका नहीं मिलती वह तलाश में जुटे रहेंगे.

पहले तो ख़बर आई कि करीना कपूर इस फिल्म में जेसिका बनेंगी, लेकिन बाद में पता चला कि करीना दरअसल फिल्म में कोई दूसरा किरदार करने वाली हैं. फिल्म दो ऐसे किरदारों की कहानी होगी जो इस हत्याकांड से जुड़े हैं. इन किरदारों में से एक के लिए करीना ने हामी भर दी है. लेकिन फिल्म में जेसिका बनने के लिए राजकुमार ने अभी किसी को नहीं चुना है यानी जेसिका के फिल्मी चेहरे की तलाश अब भी जारी है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com